ओ३म्

गुरुकुल दल की विजय

N.W. Railway team के दांत खट्टे

सहारनपुर में खेल.

(विशेष सम्वाददाता द्वारा)

२८ वैशाख तदनुसार शुक्रवार को हमारा- गुरुकुलीय-प्रथम दल का सहारनपुर में N.W. Railway team से सामुख्य हुआ। सारी जनता बड़े उमङ्ग से तथा उत्साह से खेल के प्रारम्भ में ही पहुँच गई थी। जनता दो विभागों में विभक्त होगई थी- हिन्दू अपनी ओर थे तथा मुसलमान और गोरे उनके साथ सहानुभूति प्रकाशित कर रहे थे। प्रथम अर्ध-समय (Half time) में ही हमारे मुखिया महोदय ने एक गोल उनके मत्थे जड़ दिया, जिसे वे अन्त तक न उतार सके। जयोल्लास के साथ खेल समाप्त हुई। सहारनपुर में आतङ्क छागया है। सुना है यह टीम वही है जिसने पिछले शाहजहाँपुर के टूर्नामेण्ट में Cup जीता था तथा लखनऊ में भी Shield को हथियाया था और अभी दिल्ली में एक European team को हराया था जो कि भारत की ओर से साम्राज्य-प्रदर्शिनी (Imperial British Exhibition) में जाने वाली है। ईश्वर करे कि हमारे भाई इसी तरह अपने दिग्विजय में सफल हों।

—सम्पादक

विषय सूची

विषय सूचि



सूर्य्योदय

चित्रकार— ब्र॰ इन्द्रदत्त कपिल.

ओ३म्

आर्य्य सिद्धान्त पत्रिका.



अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः॥ यजु [illegible]॥

वैशाख १९८१ विक्रमीय.

आर्य सिद्धान्त सभा द्वारा गुरुकुल [illegible] से प्रकाशित.

वर्ष २ } [illegible] "रसिक" {अङ्क १

ऐ नाथ!

नाथ! [illegible] मान चुका मैं और अधिक मत भटकाओ।
आओ, आओ दरस करादो, [illegible] मत [illegible]॥१॥

पड़ पड़ जीवन चक्रों में मैं थक कर बहुत हुआ हूं चूर।
आता हूं ज्यों निकट तुम्हारे त्योंही हो जाते हो दूर॥२॥

[illegible] भक्तों के साथ सदा ही आनंद [illegible]
दर्शन कभी नहीं देते [illegible] करते [illegible]

'रसिक' तुम्हारे रस का प्यासा आता है [illegible]।
नाथ! उसे अपना कर अब तो दिल की पूरी [illegible]॥४॥

"रसिक"

उलाहना

'जब तक स्रोत बहता रहता है, तब तक जल शुद्ध रहता है, पर जब स्रोत का बहना बन्द होजाता है तब उस में कीड़े पैदा होने लग जाते हैं। इसीसे आज इस जाति में नीच स्वार्थ, क्षुद्रता, भ्रातृद्रोह और विजाति-द्वेष आदि दोषों का जन्म हुआ है। पूर्व काल का उदार हिन्दू धर्म - आज प्राण हीन होगया है, आचार की ठठरी मात्र रहगई है। जिसका धर्म चला गया, क्या उसका पतन न होगा? अब यह देखना चाहिये कि जाति में कितना प्राण बचा है।

+ + + + + + + + +

जिस प्रकार स्वार्थ की अपेक्षा जातीयता बड़ी है, इसी प्रकार जातीयता की अपेक्षा मनुष्यत्व बड़ा है। जातीयता यदि मनुष्यत्व की विरोधिनी हो, तो ऐसी जातीयता का मनुष्यत्व के महासमुद्र में विलीन होजाना अच्छा है। अच्छा हो यदि ऐसे मनुष्यत्व विहीन देश की स्वाधीनता डूब जाय; और वह जाति फिर मनुष्य बन जाय।

× × × × × × × × ×

जिस दिन लोग आचारों के क्रीत-दास न रहकर स्वयं सोचना-विचारना सीखेंगे; जिस दिन उन के भीतर भावों का स्रोत फिर बहेगा; जिस दिन लोग जिसे उचित और कर्तव्य समझेंगे उसे निर्भय होकर करते जायेंगे -- इसमें किसी की प्रशंसा की या किसी के बिगड़ने या नाराज होने की अपेक्षा न रखेंगे, किसी की टेढ़ी की हुई भौंओं की परवाह न करेंगे उस दिन ही वे फिर मनुष्य कहे जासकने के योग्य होंगे।" 'मेवाड़ पतन'

कविता कुञ्ज।

वीणा मधुर बजादे।

दुखियों के दिल को [illegible] से , दुखमय [illegible] वाले !
रस प्रेम का [illegible] , वीणा मधुर बजादे ॥१॥
[illegible] , [illegible] से भरे जो।
[illegible] , वीणा मधुर बजादे ॥२॥
जग [illegible] में फसे जो , [illegible] हैं।
[illegible] , वीणा मधुर बजादे।
[illegible] , [illegible] पाया।
[illegible] , वीणा मधुर बजादे ॥३॥
[illegible] , [illegible] है।
[illegible] , वीणा मधुर बजादे ॥४॥
[illegible] में [illegible] , [illegible] मेरा।
[illegible] के मेरा , वीणा मधुर बजादे ॥५॥
[illegible] तेरे , [illegible] में तेरे।
[illegible] , वीणा मधुर बजादे ॥६॥
[illegible] को मेरो [illegible] , [illegible] प्रेमी।
[illegible] तेरो [illegible] , वीणा मधुर बजादे ॥७॥

कण्टक में क्यों अटक रहा।

[illegible] रे सूरज क्यों [illegible] रहा।
जन्म मरण के इस कुचक्र में [illegible] मन को क्यों [illegible] रहा॥
दुखमयी दूषित दुनियां में [illegible] क्यों भटक रहा।
सूरज "अमल" तज स्वर्ग लोक का "कण्टक में क्यों अटक रहा"॥

"अमल"

बस देखने से मेल में दङ्ग हुआ

कविता सरिता में नहा करके, रस से रस डाल उसका कर के
[illegible] गीत बजा करके, रस को रसना को चखा कर के ॥
जहाँ मन्द आनन्द उमंग हुआ, बस देखने से मेल में दङ्ग हुआ ॥१॥
[illegible] से [illegible] को [illegible] पर [illegible] को मनमोहक सूरत करें
कहीं चित्र लिये मित्र सुचित्र धरे कहीं धूप अनराम [illegible] धरे
कहीं भक्ति भाँति मनोहर संग हुआ, बस देखने से मेल में दङ्ग हुआ ॥२॥
[illegible] मेल अमेल हुआ जनका, दुख दूर हुआ तन का मन का
[illegible] का [illegible] हुआ, [illegible] कहीं गम दूर हुआ
सब फेर मिले फिर संग हुआ, बस देखने से मेल में दंग हुआ ॥३॥
रस को रखना रसतीरथी पर, सुख हास मरा कहीं पर
कहीं [illegible] के [illegible] रहे हँस हास्य हँसाते कहीं
[illegible] रस मेल हुआ, बस देखने से मेल में दंग हुआ ॥४॥
[illegible] रस [illegible]
[illegible] मिला रस [illegible] हुआ [illegible]
[illegible] बस देखने से मेल में [illegible] *

X X X "सोही" ४४

आही जाता है

न घबराओ जरा भी और रन कर और तुम धाओ
[illegible] में [illegible] सह कर सूरज तो पीछे आ ही जाता है ॥
[illegible] जो आज है फूल न फूलो देख अपने को
[illegible] हँसता है क्यों तू दिन तेरा भी आ ही जाता है ॥
हुआ मद चूर तू क्यों है नहीं तुझको सुहाता है
अभी सत्तत का दिन तेरा अभी बस आ ही जाता है ॥
[illegible] है [illegible] ने इनको तुझे क्या [illegible] छोड़ देना वह
नहीं बस हाय तेरा [illegible] का आ ही जाता है ॥ 'सोही'

* आनन्द सम्मेलन में मण्डप को लक्ष्य करके पढ़ी गई।

अछूतों की आह

एक दिन हम भी किसी के लाल थे, आँख के तारे किसी के थे कभी।
बूंद भर गिरता पसीना देखकर, था बहा देता घड़ों लोहू कोई ॥१॥
देवता देवी अनेकों पूजकर निर्जला रहकर कई एकादशी।
तीरथों में जा द्विजों को दान दे, गर्भ में माँ ने हमें पाया कभी ॥२॥
जन्म के दिन फूल की थाली बजी दुःख की रातें कटीं सुदिन हुआ।
प्यार से मुखड़ा हमारा चूमकर स्वर्ग सुख पाने लगा माता पिता ॥३॥
हाय हमने भी कुलीनों की तरह जन्म पाया प्यार से पाले गए।
जो बचे फूले फले तब क्या हुआ, कीट से भी नीचतर माने गए ॥४॥
जन्म पाया पूत हिन्दुस्तान में अन्न खाया जल यहीं का है पिया।
धर्म हिन्दू का हमें अभिमान है, नित्य लेते नाम हैं भगवान का ॥५॥
पर अजब इस लोक का व्यवहार है, न्याय है संसार का [illegible]।
श्वान छूना भी जिन्हें स्वीकार है हैं उन्हें भी हम [illegible] ॥६॥
जिस गली से उच्च कुल वाले चलें उस तरफ चलना [illegible]।
धर्म ग्रन्थों की व्यवस्था है यही [illegible] दण्ड है ॥७॥
छोड़ कर प्यारे पुराने धर्म को आज ईसाई मुसल्ला हम बने।
नाथ, यह कैसा निराला न्याय है, तो हमें सानन्द सब छूने लगे ॥८॥
जो अछूतों से बलात छूते हैं, कर्म कोई स्वच्छ करें [illegible] पूत हैं।
हैं सभी को ये पराया मानते क्या न हे स्वामी तुम्हारे दूत हैं ॥९॥
शासकों से माँगते अधिकार हैं पर नहीं अन्याय अपना छोड़ते।
प्यार का नाता पुराना तोड़ कर है नया नाता निराला जोड़ते ॥१०॥
नाथ! तुमने ही हमें पैदा किया रक्त मज्जा मांस भी तुमने दिया।
ज्ञान दे मानव बनाया फिर भला क्यों हमें ऐसा अपावन कर दिया ॥११॥
आ दयानिधि कुछ इन्हें दो आप [illegible] अछूतों की उमड़ती आह का,
यह असर होवे कि हिन्दुस्तान में [illegible] प्यार का ॥१२॥

"रामचंद्र शुक्ल"

पोशाक का मनुष्य पर प्रभाव

(१) "पोशाक में बहुत ही चटक मटक और सज-धज का होना उसके शौकीनी और विषयी होने का लक्षण है।"

(२) "पोशाक में कोई सिद्धान्त जातीयता अथवा ढंग का होना अथवा उसमें सदैव परिवर्तन होते रहना उस मनुष्य के विचारों के अंग ओलका परिचय देता है।"

(3) "पोशाक मैली कुचैली और अस्त व्यस्त रखना मनुष्य के बहुत आलसी होने का लक्षण है।"

(४) "पोशाक के सिलसिले पहिनना बटन अथवा तनी कभी बन्द करके खुली रखना मनुष्य में स्फूर्ति की कमी और लापरवाही बतलाते हैं॥"

(५) "पोशाक को पलटा न करना मनुष्य की बेध्यान वृत्ति अथवा उदासीन वृत्ति का परिचायक है।"

आर्य्यसिद्धान्त पत्रिका

कुसुम माला
१





कुसुममाला
२

श्रद्धया अग्निः समिध्यते - श्रद्धया हूयते

हविः । श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा

वेदयामसि ॥ १ ॥

[illegible] लाप [illegible] ततस्या ।

[illegible] भोजेषु यज्वरि [illegible]

यथा देवा [illegible] [illegible] ।

एवं भोजेषु यज्वस्व [illegible] कृधि ॥ [illegible]

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।

श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धयाविन्दते वसु ॥ [illegible]

श्रद्धां प्रात हवामहे श्रद्धां मध्यंदिने परि ।

श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ ॥

[illegible] तं शम्भु मना भुवा

[illegible] । पु[illegible] [illegible] ॥

उत [illegible] [illegible] भ्रातोत नः

सखा । स नो [illegible] ॥ ७ ॥

यददो वात ते गृहे ऽमृतस्य निधिर्हितः

ततो नो धेहि जीवसे ॥ ८ ॥

शिक्षा-विधि
प्लेटो. (ले. ब्र. नारायण)

प्रजा राष्ट्र की सन्तान होने के कारण अपनी यथोचित शिक्षा के लिए राष्ट्र ही पर आश्रित रहती है। प्लेटो ने इस बात पर बड़ा ही बल दिया है कि प्रजा की सारी शिक्षा राष्ट्र के ही हाथ में होनी चाहिए। शिक्षा का आदर्श उत्तम नागरिकों को उत्पन्न करना है। सारी शिक्षा में राष्ट्रहित तथा राष्ट्र वृद्धि ही का भाव ही प्रधान रहना चाहिए। शिक्षणालयों का ~~[illegible]~~ प्रबन्ध तथा पाठविधि का निश्चय केवल उसी दृष्टि से होना चाहिए जिस से स्वदेशाभिमान और राष्ट्र गौरव बढ़े। शिक्षा का क्रम उस के अनुसार संक्षेप से निम्न है:-

सब बच्चों का जन्म के समय राष्ट्र की ओर से निरीक्षण होना चाहिए यदि उन की शारीरिक अवस्था ऐसी न नज़र आवे कि उस के द्वारा वे बड़े होकर राष्ट्रसेवा का भार उठा सकें - केवल राष्ट्र पर बोझ बने रहें - तो उन को उसी समय मार देना चाहिए जीवन यात्रा को आरम्भ करने का अधिकार केवल ऐसे बच्चों को दिया जाना चाहिए जो सर्वाङ्ग, बलिष्ट और पूर्ण नज़र आवें। यद्यपि यह कार्य हमें जीव हत्या के बराबर नज़र आता है पर प्लेटो सब कुछ राष्ट्र की दृष्टि से ही देखता था - राष्ट्र हित के सामने वह व्यक्ति का कुछ मूल्य नहीं समझता था।

ऐसे अनेक बच्चों के उदाहरण हमें मिलते हैं जो बाल्यकाल में दुर्बल होने पर भी युवा काल में बड़े शूरवीर और योद्धा हो गये हैं ऐसे भी अनेक व्यक्ति हमें देखने में आते हैं जो अत्यन्त दुर्बल शरीर होते हुए भी राष्ट्रसेवा में सब से आगे रहते हैं - परन्तु प्लेटो का प्रारम्भिक निरीक्षण बालकों के लिए जीवन को उपयोगी बनाने का कोई अवसर नहीं देता।

जो बच्चे हृष्ट पुष्ट शरीर लेकर संसार में आते हैं उन का पाठ्य क्रम निम्न प्रकार से है:-

पहले ३ वर्षों तक बच्चों के शारीरिक पोषण पर ही ध्यान दिया जाना चाहिए। बच्चों को इस के लिए राष्ट्र की ओर से बनाए हुए बालगृहों में भेजा जाना चाहिए - जहां उन की हर प्रकार से स्वास्थ्य रक्षा की जा सके।

३ वर्ष से ६ वर्ष तक बच्चों की धार्मिक शिक्षा आख्यायिकाओं

तथा परम्परागत वंशीय कथाओं द्वारा होनी चाहिए। यहां पर प्लेटो हमारा ध्यान एक आवश्यक बात की ओर खींचता है- कि वे गाथाएं और कथाएं बच्चों का अकल्याण करने वाली न होनी चाहिएं- परन्तु किसी न किसी उत्तम शिक्षा को देने वाली होनी चाहिएं। गाथाएं सत्य है या असत्य इस बात की चिन्ता न होनी चाहिए। प्लेटो उस समय की प्रचलित गाथाओं का बड़ा विरोधी था जिन में कि देवी देवताओं पर अनेक प्रकार के लांछन लगाए जाते थे इन का बच्चों को सुनाना उसने निषिद्ध कर रक्खा था।

६ से १० वर्ष की आयु पर्यन्त शारीरिक व्यायाम द्वारा शारीरिक उन्नति पर ध्यान देना चाहिए।

१०-१३ वर्ष की आयु पर्यन्त लिखना पढ़ना भली प्रकार सिखा देना चाहिए।

१३-१६ वर्ष की आयु पर्यन्त साहित्य तथा संगीत की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस में इस बात का विशेष ध्यान रहे कि- ये साहित्य बच्चों के आचार को अच्छा और सुदृढ़ बनाने वाला हो- कोमलता को बढ़ाने और हृदय के भावों को शिथिल बनाने वाला न हो। कवियों को तो उसने अपने आदर्श राष्ट्र में रहने का स्थान भी इस शर्त पर दिया है वे अपनी कविता में वास्तविक चरित्रों का और वास्तविक दृश्यों का ही चित्र खींचें- उन के अवास्तविक कल्पनात्मक तथा मिथ्या प्रतीति से बच्चों में सत्य और वास्तविकता के प्रति अनुराग कम हो जाता है; और वे कवियों के अवास्तविक चरित्रों को पढ़ कर अपने जीवन को निराशामय बना लेते हैं।

सोलह से अठारह वर्ष की आयु पर्यन्त गणित की शिक्षा देनी चाहिए यह बच्चों में विशुद्ध कल्पनाशक्ति और गम्भीर आलोचनाशक्ति बढ़ाती है।

अठारह से बीस वर्ष पर्यन्त बच्चों को शस्त्र विद्या देनी चाहिए क्योंकि राष्ट्र के नागरिकों के लिए क्षात्र धर्म का पालन अत्यावश्यक है।

२० वर्ष तक की शिक्षा को प्लेटो प्रारम्भिक शिक्षा कहता था। राष्ट्र के सब बच्चों के लिए इस शिक्षा को आवश्यक समझता था। २० वर्ष के पश्चात् बच्चों का पुनः चुनाव होता था जो उच्च शिक्षा के योग्य समझे जाते थे- उन के लिए आगे शिक्षा का विधान था। शेष सब सेना विभाग और श्रम विभाग में लगा जाते थे।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले युवकों को ३० व पर्यन्त विशेष वैज्ञानिक शिक्षा दी जाती थी। इस का उद्देश्य यह था कि भिन्न २ वैज्ञानिक सिद्धान्तों की आलोचना द्वारा उन की मानसिक शक्तियों का पूरा विकास हो और वे विगत तथा दीर्घ दृष्टि को प्राप्त कर के बाह्य घटनाओं की तात्विक आलोचना कर सकें।

३० वर्ष के पश्चात् पुनः इन चुनाव होता था - योग्यतम विद्यार्थियों को पांच वर्ष और निरन्तर तर्क-शास्त्र (Dialectic) की शिक्षा दी जाती थी। शेषों को राष्ट्र का नौकरी कर्मचारी बना दिया जाता था। योग्यतम विद्यार्थियों को ३५ वर्ष की आयु के पश्चात् ५० वर्ष तक देश सेवा के भिन्न २ कार्यों में लगा कर शासकों के कार्य का अनुभव कराया जाता था। इस १५ वर्ष के सेवा काल में उन के आचरण की हर प्रकार से प्रलोभनों द्वारा परीक्षा की जाती थी। यदि वे इन सब में उत्तीर्ण हो जाते तो इस परिपक्व आयु में राष्ट्र का शासन भार उन के कन्धों पर डाल दिया जाता था।

प्लेटो का यह सारा शिक्षा क्रम नागरिकों को उत्पन्न करने के लिए है। श्रमियों के लिए या व्यवसाइयों के लिए जो प्लेटो के लिए इन तीनों श्रेणियों में निकृष्ट श्रेणी में हैं इस प्रकार की शिक्षा का विधान नहीं। उन को 'प्रायः' शिक्षा से वञ्चित ही रक्खा गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि - प्लेटो अपने समय की अवस्थाओं से बाधित होकर शिक्षा का अधिकार मनुष्य मात्र के लिए समान नहीं मानता था। उच्च दो श्रेणियों के लिए अवश्य शिक्षा को बाधित तथा आवश्यक समझता था।

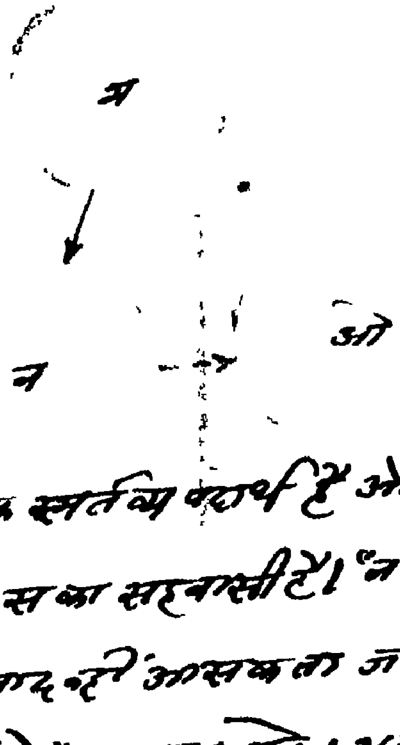
यह प्लेटो के संक्षेप से शिक्षा विषयक सिद्धान्त हैं - इन की आलोचना गुण दोष दिखाते हुए अगले अङ्क में पाठकों के सामने रखने का प्रयत्न करेंगा



स्मृति

(ले. अ. सुखदेव)
(क्रमागत)

किसी वस्तु को स्मरण करने में वही क्रिया होती है, जो किसी खोई वस्तु के ढूंढने में होती है। इस को हम चित्र से इस प्रकार समझा सकते हैं —



"न" एक स्मर्तव्य पदार्थ है और "ओ" उस का सहवासी है। "न" तब तक याद नहीं आसकता जब तक "ओ" याद न आवे। एवं कल्पना करो कि "न" और "ओ" दोनों पदार्थ याद नहीं आते, और "म" पदार्थ उस का एक और सहवासी है, तो "म" पदार्थ के याद आने पर "न" और "ओ" याद आजायगे। अर्थात् यदि हम किसी को स्मृति में रखना चाहते हैं तो आवश्यक है कि हम उसके सहवासियों को करें। उदाहरण स्वरूप यदि हम किसी रास्ते को याद रखना चाहते हैं तो चलते हुए पास के मकान तथा अन्य सहायक वस्तुओं को ध्यान में ले आते हैं एवं यदि किसी हम याद रखना चाहते हैं तो प्राय: कपड़े में गांठ दिया करते हैं। इस प्रकार नाना उदाहरण से देते (Recall) के लिए जासकते हैं।

धारणा (Retention) में वात-संस्थानिक क्रम (Nervous system) में अवयवों का कार्य —

किसी स्मर्तव्य वस्तु पर बहुत काल सहित फिर सोचना ही

सभी में स्वाभाविक होती है तथापि बच्चे और बूढ़े में यह अत्यन्त भिन्न होती है। यह धारकता (Tenacity) जीवन के भिन्न २ भागों में भिन्न २ होती रहती है। बचपन का इस प्रकार का होता है कि उनका मन सर्वथा प्रभावित नहीं होता। वह ऐसे होते हैं कि उनपर यदि थोड़ा सा भी प्रभाव पड़े तो शीघ्र ही स्मरण हो जाता है, और वह बहुत से fact बताएं याद रख सकते हैं। यह परिणाम भी इसी धारकता (Tenacity) के कारण है। जितने बस संस्कार बचपन के आदर्श हुए हैं, उनके बड़े होने में भी यही कारण है कि बच्चों में यह धारकता शक्ति (Tenacity) अधिक थी। वह व्यक्ति छोटी अवस्था में ही बहुत सी विद्याओं को सीख जाते हैं। इतनी विद्याओं के सीखने में भी यही कारण है कि उनकी धारकता शक्ति (Tenacity) की अधिकता है। अतः में वृद्धावस्था सभी के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब कि हम जितना याद करते हैं उतना ही पीछे से भूल जाते हैं अर्थात् दिमाग के उतने ही पुराने रस्ते मिट जाते हैं जितने कि नए बनते हैं। अतएव वृद्धावस्था में ऐसा समय आता है जब कि भूलना अधिक है और स्मरण थोड़ा होता है।

ब्र. सुखदेव

(अपूर्ण)

पारसी धर्म

(लेखक - ब्र० धर्मदेव)

पारसी लोग फारस में पहले राज्य करते थे। परन्तु सासानियन वंश के अन्तिम राजा यज्दगिर्द को मुसलमानी बादशाह खलीफ़ा उमर ने ६४२ ई० सन् में निहावन्द के युद्ध में हरा दिया और उसने पारसियों पर अत्याचार करना शुरू किया। कई तो मुसलमान बन गए और शेष खुरासान में भाग गए। वहां से उरमुज़ में चले गए। जब वहां भी मुसलमानों ने उनका पीछा न छोड़ा तो वे शनै: २ भारत में आने लगे। उस समय बम्बई प्रान्त का राजा जादेराणा (जयदेव) राज्य करता था। उस ने इन्हें कुछ शर्तों पर रख लिया।

इस प्रकार जब पारसी लोग भारत में आ गए तब पाश्चात्य विद्वानों को इन के नए धर्म का पता लगा। इन के [illegible] है। इन के ग्रन्थों के आधार पर हम यह दावा कर सकते हैं कि पारसी मत वैदिक धर्म का अंग है। यद्यपि डारमेस्टीटर आदि कई विद्वानों ने पारसी मत तथा वैदिक धर्म का स्रोत एक तीसरा Indo-Iranian धर्म बताया है परन्तु यह मत उन के अनुयायी पाश्चात्य विद्वानों को भी मान्य नहीं। इस के अतिरिक्त पारसी मत तथा वैदिक धर्म में निम्न चार प्रकार की समानताएं मिलती हैं।

(क) भाषा सम्बन्धी
(ख) देवता सम्बन्धी
(ग) यज्ञ सम्बन्धी
(घ) विचार सम्बन्धी

कई Erskine तथा जेम्स डारमेस्टीटर जैसे विद्वानों की सम्मति में अवेस्ता से आधुनिक पारसी संस्कृत की अपेक्षा अधिक मिलती है। परन्तु हौग, जेम्स विलसन इत्यादि विद्वानों के मत में अवेस्ता भाषा तो संस्कृत से बहुत अधिक मिलती है। जो कि निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो सकती है।

संस्कृत	अवेस्ता	संस्कृत	अवेस्ता
सोम	= होम	वराह	= वराज
सप्त	= हप्त	अहि	= अज़ि
मास	= माह	अश्व	= अस्प
सेना	= हेना	विश्व	= विस्प

इस के अतिरिक्त व्याकरण सम्बन्धी नियम दोनों भाषाओं के समान हैं।

(ख) देवता सम्बन्धी समानताएं—

बहुत वैदिक देवता अवेस्ता में पाए जाते हैं। परन्तु कई वैदिक देवता अवेस्ता में बुरे अर्थ में और कई अच्छे अर्थ में आते हैं। इन में से निम्न बुरे अर्थ में प्रयुक्त वैदिक देवता हैं।

(वैदिक) इन्द्र = इन्द्र (पारसी)
शर्व = सौर्व
नासत्य = नौनहत्य

इन्हें अवेस्ता में [illegible] कहा गया है। इस के सिवाय निम्न देवता अच्छे sense में पाए जाते हैं—

(वै.)		(पा.)
मित्र	=	मिथ्र
अर्यमन्	=	ऐर्यमन्
भग	=	बघ
अरमति	=	आरमैती
नराशंस	=	नैर्योसंघ
वायु	=	वायु
वृत्रघ्न	=	विरिथ्रघ्न
त्रित	=	थ्रित
त्रैतन	=	थ्रैतन
त्रयस्त्रिंशत् देव	=	३३ रतु
यज्ञ	=	यिस्न

इन में से अर्यमन् के दोनों शाखाओं में दो २ अर्थ हैं। (a) मित्र (b) विवाह का देवता। यद्यपि वैदिक धर्म में विवाह देवता को भिन्न नहीं मानते तथापि विवाह काल में पति पत्नी से मित्रभाव से रहने के लिए अर्यमन् देवता के बुलाए जाते हैं इस कारण पारसियों ने इसे एक अलग देवता मान लिया। आरमैति को पारसियों ने वसुन्धरा का रूप दिया है जो उनके लिए अन्न आदि चीजें लाती हैं। ~~वह~~ इसे वैदिक धर्म में पृथिवी कहा है जिस का विशेषण 'पुरन्धी' है। परन्तु वहां इस का अर्थ (पुरिधारणोऽभिलाषे.) सब को अपने में मिला लेने वाली है। इसके भी दोनों शाखाओं में दो २ अर्थ हैं। (a) भक्ति (b) पृथिवी। पारसी साहित्य में नैर्योसंघ का अर्थ अहुरमज़दा का दूत है। वैदिक साहित्य में नराशंस का अर्थ अग्नि है, और 'अग्निर्वै देवानां दूत इति' ऐसा कहा गया है। विरिथ्रघ्न को अच्छे अर्थ में देखकर लोगों को आश्चर्य होगा जब कि इस का पर्यायवाची इन्द्र को बुरे अर्थ में लिया है। परन्तु हौग महाशय ने इस का ठीक उत्तर दिया है कि यद्यपि वृत्रघ्न को भी इन्द्र के संग से बुरे अर्थ में आना चाहिए था परन्तु त्रित को भी इस का विशेषण मानने से पारसियों ने इसे भी अच्छे अर्थ में मान लिया।

इसी प्रकार अन्य देवताओं में भी समानताएं पाई जाती हैं। कइयों का यह आक्षेप है कि यदि पारसी धर्म वैदिक धर्म का अंग है तो देव शब्द तथा इन्द्र आदि शब्द पारसी में बुरे अर्थ में क्यों प्रयुक्त होते हैं। इसका उत्तर हौग महाशय यह देते हैं कि एक बार उत्तरी ध्रुव से चलकर ~~[illegible]~~ आर्य जब आक्सस तथा यक्षारटस नदियों के बीच के प्रान्त में पहुंचे तो पारसियों को स्थान पसन्द आया और वे लोग वहीं रहने लगे। वहां भारतीय आर्यों तथा फारस के आर्यों में लड़ाई हो गई। उस समय पारसियों ने देव, इन्द्र आदि शब्द को बुरे अर्थ में प्रयुक्त करना शुरू किया। वास्तव में दोनों एक ही धर्म के मानने वाले थे।

(ग) यज्ञ सम्बन्धी

वैदिक.		पारसी.
अथर्वन्	=	आथर्व

आहुति = आज़ुति
इष्टि - इष्टि
होता = जोता
अध्वर्यु = रत्वी
ज्योतिष्टोम = यजिश्ता
अग्निष्टोम = इजश्ने
पुरोडाश - दारुं
गो दुग्ध - गौश जीवम
गोघृत = गौश घो
दर्शपौर्णमासेष्टि = दारुं
चातुर्मास्येष्टि = गहम्बार

इस प्रकार यज्ञ सम्बन्धी सामान तथा कई मंत्र यथाक्रम मिलते हैं। गोकि लेखक स्ट्रेबो का कहना है कि पारसी लोग त्याग जानते हैं और उस में हवनी सामग्री तथा घी या तेल डाल कर उसे प्रदीप्त करते हैं।

(घ) विचार सम्बन्धी समानताएं-

(a) वैदिक धर्म के अनुसार समाज विभाग चार प्रकार का है। १ ब्राह्मण, २ क्षत्रिय, ३ वैश्य, ४ शूद्र। इसी प्रकार पारसी धर्म पुस्तक यस्न में निम्न चार विभाग किए हैं।

१ अथ्रवा = ब्राह्मण
२ रथेश्तो = क्षत्रिय
३ वास्त्रियोफ़्श्यां = वैश्य
४ हुइती = शूद्र

(b) एक देवतावाद —

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति॥ १।१६४।४६

इसी प्रकार पारसियों का मत भी एक देवता वाद का पक्षपाती है। इस के विषय में Haug महाशय के निम्न विचार हैं —
The leading idea of his theology was monotheism, i.e, that there are not many gods but only one.

(c) सृष्टि उत्पत्ति-

नामे ज़रथुश्त के पढ़ने से पता लगता है कि पारसी लोग हमारी तरह सृष्टि उत्पत्ति मानते थे। उस में लिखा कि एक बार भारत से व्यास जी फ़ारस गए और उन्होंने ज़रदुश्त से प्रश्न किया कि "अग्नि आकाश के नीचे, वायु अग्नि के नीचे, जल वायु के नीचे, और पृथ्वी जल के नीचे क्यों है?

तैत्तरीयोपनिषद् में लिखा है-
तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। —
इस में केवल कुछ क्रम का भेद है।

(वै०)	(पारसी)
आकाश	आकाश
वायु	अग्नि
अग्नि	वायु
जल	जल
पृथिवी	पृथिवी

(d) पुनर्जन्म --

पारसी पुस्तक दोशंगो में लिखा है कि पुराना चोला छोड़ कर नया शरीर धारण करना अनिवार्य है।

साथ ही यस्न लिखते हैं — "अशुभ कर्मों का फल अशुभ और शुभ कर्मों का शुभ फल भोगते हैं।"

कठवल्ली में लिखा है —

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम॥
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथाश्रुतम्॥

(e) सदाचार सम्बन्धी शिक्षायें

पारसी मत में कर्म ३ प्रकार के माने गए हैं। १ मानसिक, वाचिक, कायिक।

(अवस्ता) हुमतम् = सुमतम् (वैदिक)
हूख्तम् = सूक्तम्
हृवर्ष्तम् = सुकृतम्।

इसी प्रकार लिखा भी है। यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति। यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति॥

(f) पारसियों में यज्ञोपवीत का पहिनना धर्म समझा गया है। इसे वे कुस्ती नाम से पुकारते हैं।

इसी प्रकार छोटी २ समानतायें हैं। यथा सेन्ता मन्यु गाथा में त्रिष्टुप् छन्द है। अहुनवैति में गायत्री आसुरी। वहुखशत्र गाथा में उष्णिक् आसुरी और उश्तवैति में पांक्ति आसुरी छन्द पाये जाते हैं।

(g) जिन्दावस्ता में कई स्थानों पर पारसियों ने अपने को आर्य कह कर लिखा है। वेदों में तो आर्य शब्द का प्रयोग बहुत देखा जाता है यहां तक कि आर्य शब्द भारतीय आर्यों के लिए रूढ़ी होगया है।

इन उपरि लिखित समानताओं को देखकर हम यह निश्चय से कह सकते हैं कि पारसी मत वैदिक धर्म से उद्धृत किया गया है। साथ ही जब पारसी मत के प्रवर्तक जरदुश्त का जन्म १००० ई. पू. है और वेदों का समय पाश्चात्य विद्वान् भी कम से कम ४००० ई. पू. अवश्य मानते हैं।

इन दो धर्मों के सिवाय किसी पुराने धर्म के न मिलने पर भी मि. जेम्स डारमेस्टीटर जैसे विद्वानों का पारसीमत तथा वैदिक धर्म का एक और स्रोत मानना सरासर अन्याय होगा।

पाठक गण! मैं समझता हूं कि आप इस मेरे छोटे से लेख से ही जान गए होंगे कि पारसीमत का स्रोत वैदिक धर्म ही है। अब मैं आप के सामने पाश्चात्य विद्वानों के सम्मिलित उद्धरण को आप के सामने पेश कर देता हूं।

The Key to the Avesta is not the Pahalvi, but the Veda. The Avesta is mere echoe of the Veda, nothing else.

अर्थात् अवस्ता की कुञ्जी वेद है। और अवस्ता केवल वेदों की प्रतिध्वनि मात्र है।

धर्मदेव



पंजाब केसरी लाला लाजपत राय [चित्रकार देवदत्त कपिल]

देशभक्ति कूट २ हृदयमें जमी रहे, देश ही के लिए नाहिं तनकी भी चाह है;
जेल बीच ठेल देओ चक्की में भी पेल लेओ, कष्ट लाख देओ नहि निकलत आह है।
शिक्षा का प्रचार कर, विद्यालय खोलकर, नवयुवकों में भक्तिभाव उपजाय हैं;
भारत की लाज आज एक ही बचाने वाले, धन्य पूजनीय लाला लाजपत राय हैं

मृत या शव.

(ले० ब्र० हरिवंश)

सज्जनो! मैं आप के सन्मुख किसी वेदमन्त्र की व्याख्या - भाष्य - नहीं करना चाहता, न ही मैं आप के सन्मुख किसी गम्भीर सिद्धान्त का पोषण या खण्डन करना चाहता हूं और न ही मैं मूर्तिपूजा, श्राद्ध या वर्ण व्यवस्था पर लेख लिख आप की रोचकता को बढ़ाना चाहता हूं। मैं केवल एक छोटा सा विचार आप के सामने रखने लगा हूं आशा है आप अवश्य उस पर विचार करेंगे। मैं आप के सन्मुख मृत-शव पर विचार करने लगा हूं। अर्थात् आदमी के मर जाने पर - उसके स्थूल देह से प्राणों के संबन्ध का विच्छेद हो जाने पर - उस शव का क्या करना चाहिये? यह प्रश्न आप के सामने है।

कई लोगों का मत है कि हमारा देह पंच भूतों का बना हुआ है अतः इसे पंच भूतों में मिला देना चाहिये। इसी में कई कहते हैं कि शव को पानी में बहा देना चाहिये - किसी पवित्र गंगा जैसी नदी में फेंक देना चाहिये। दूसरे लोग कहते हैं कि इसे पृथिवी में गाड़ कर पृथिवी भूत में मिला देना चाहिये। कुछ दिन तक गड़ा रहने से मट्टी होकर यह मट्टी में मिल जायगा और न किसी प्रकार की दुर्गन्ध आयगी। तीसरे लोगों का मत है कि इसे वायु में खुला रख छोड़ना चाहिये धीरे २ इस के परमाणु वायु में मिल जायेंगे। चौथे लोगों का यह कहना है कि इसे अग्नि में अर्थात् तेजस् नामक भूत के समर्पण कर देना चाहिये। पांचवां जन समुदाय यह कहता है कि शव को किसी ऊंचे मचान पर या किसी निर्जन स्थान में रख देना चाहिये जिस से कि पशु पक्षी इसे खा कर खतम कर दें। ये पांच प्रकार के विचार हैं जो हम जन समुदाय में सुनते हैं। हमें ने इन्हीं पर विचार करना है और देखना है कि वस्तुतः तत्व क्या है - इन पांचों में से कौन सा ठीक है।

सब से प्रथम पहिले मत पर ही विचार करिये। आप शव को पानी में बहा दीजिये। शव गंगा में हरद्वार की पैड़ी से या दक्ष के मन्दिर से गंगा में फेंक दिया गया या किसी और जगह की धार से गंगा में छोड़ दिया गया। जैसे कि बहुधा हिन्दू लोग करते हैं। आप को मालूम होगा ही कि इस अनन्त ब्रह्माण्ड में प्रति दिन असंख्य मनुष्य मरते हैं। जो शहर गंगा के तट पर स्थित हैं एक तो उन की आबादी अधिक है दूसरे मकान पास २ होने से लोगों की सफाई में भी कसर नहीं रहती। अस्तु. दस दस मर रहे हैं और दस दस गंगा में तड़क रहे हैं। गंगा में खूब और जगह के जीते जागते मछली कुछली लड़ा करते हैं पर आज गंगा में मरे

दुर ही आप सभे पुस्ती लउ रहे हैं। शुभ्र सलिला भागीरथी आज नालियों के कीटाणुओं से भरी हुई इस कुजल की सुगन्धि को भी मात कर रही है। लोग इसी मुर्दे के रस वाले मधु गंगा माई के मधुर जल को पीकर अपने को धन्य-धन्य मानते हैं। इस का परिणाम क्या होगा? दूसरे दिन वह भी वहीं अपने भाइयों में जा मिलेगा। अस्तु शव देव बहते २ कानपुर के किनारे पर जा लगे। या किसी और जगह जहां पानी थोड़ा था अपना डेरा डण्डा डाल लिया। कुछ दिन तक पड़े रहे। जब खूब सड़ गये, रोग के कीटाणु इधर उधर बीमारी फैला गये तो गंगा माई की बाढ़ वहां से बहा ले गई अगर बहुत प्रेम हुआ तो बहुत वहीं रहने दिया।

अकस्मात् कोई शव बहता २ गुरुकुल वासी ब्रह्मचारियों के दर्शन करने के लिये वहां भी आ पहुंचा। आयुर्वेद के विद्यार्थियों ने लपक कर Dissection के लिये पकड़ लिया। इस प्रकार पाठकगण आप ने देख लिया कि सिवाय इस लाभ के कि आयुर्वेद के विद्यार्थी उस शव का Dissection कर सकें और कोई लाभ नहीं। यह लाभ भी बहुत थोड़े से विद्यार्थियों को होता है। किसी समाज या समाज के हिस्से पर्याप्त को भी इस से कोई फायदा नहीं। अतः प्रथम प्रकार के मत से मैं तो सन्तुष्ट नहीं।

दूसरे प्रकार के वे लोग हैं जो यह कहते हैं कि शव को पृथिवी में गाड़ देना चाहिये। मुसलमान इसी विचार या सिद्धान्त के पोषक हैं। मैं अब इस विचार पर करता हूं। इस काम के लिये जमीन का थोड़ा सा पर्याप्त हिस्सा प्रत्येक ग्राम और शहर में अलग रखा हुआ होता है। जो कोई मर जाता है उसे वहीं लाकर गाड़ दिया जाता है। इस प्रकार कुछ दिनों में वह मिट्टी का पुतला मिट्टी में ही मिल जाता है। इसमें भी मैं इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूं कि अच्छा हो यदि वह हिस्सा खेती के काम में लाया जाय। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम और शहर से थोड़ा २ सा जमीन का भाग मिलने से पर्याप्त जमीन खेती के लिये मिल जायगी और भूख से दिन रात मरते हुए हमारे लाखों भारतीय भाइयों की इस से अवश्य यत्किंचित् क्षुधा शान्त होगी। शव का क्या करना चाहिये इस का Solution मैं आगे चल कर बताऊंगा।

तीसरे प्रकार के वे लोग हैं जो यह कहते हैं कि इसे वायु में सुरक्षित रख देना चाहिये ताकि इसके परमाणु धीरे २ वायु में मिल जावें और कोई शव को विशेष क्षति न पहुंचे। इस मत से बहुत ही कम लोग सहमत हैं- जो सहमत हैं वे भी रिवाज (Custom) के कारण। अतः इस विषय में मैं आप के सामने कुछ कह कर समय नहीं

खोना चाहता।

चौथी प्रकार के वे लोग हैं जो यह कहते हैं कि शव को आग में जला देना चाहिये। सिर्फ यही नहीं अपितु उसके साथ घी और सामग्री डालने को भी कहते हैं। इस सिद्धान्त के पोषक आर्य समाजी हैं। वस्तुतः यह विधि बहुत ठीक है परन्तु इसका सारी समाज में प्रचलित होना असम्भव नहीं तो दुष्कर जरूर है। पाठको, आपको मालूम है आपके देश में कितने भारतीय रोज भूख के कारण मरते हैं? आपको मालूम है कि कितने लोगों को रोटी देखने तक को नसीब नहीं होती? आपको मालूम है कि आपके देश में कितने ऐसे गरीब भारतीय भाई हैं जिन्हें घी का नाम तक नहीं मालूम। उन्हें मालूम ही नहीं कि घी क्या होता है। खाने का तो कहकर ही, घी देखने को भी नहीं मिलता। आप तो रोज घी में पूरी कचौरी तल कर आप हलवा उड़ाते हैं। आप में तो सामर्थ्य है कि आप घी को फूंक सकें पर अरे! वे गरीब क्या कर सकते हैं। आपको मालूम है कि वे क्या करते हैं? क्या आप कल्पना कर सकते हैं किसी के मर जाने पर वे क्या करते होंगे? सुनिये, जब कोई मर जाता है वे उसे ले जाते हैं। कहीं से लकड़ी की तलाश करते हैं, मोल लेने की तो उनमें ताकत ही कहां है। कहीं से भाग्यवश दो तीन लकड़ी मिल गई तो उन्हें ही उठा लिया। एक को ऊपर रखा एक को नीचे। बीच में शव को रखा और ऐसे २ आग लगा दी। क्या हुआ? शव आधा ही रह गया। न तो पूरा जल सका न ही पूरा बचा। बीच का हो गया। टांगें जल गईं, धड़ रह गया, सिर बचा नाक जल गई। न घी डाला न सामग्री। सुगन्धि की जगह, दुर्गन्धि का राज्य हो गया। चारों ओर कीड़े मक्खियां भिन भिनाने लगीं। परिणाम यह हुआ कि लोगों का बिमारी न देखने पर उनके सड़ने से और भी रोग फैलने लगे। इसलिये यह प्रथा भी समाज में लाभकर नहीं प्रतीत होती है। यह भी सन्तोषप्रद नहीं समझी जा सकती।

पांचवी प्रकार के वे लोग हैं जो यह कहते हैं कि मुर्दे को किसी उच्च पर्वत पर या किसी निर्जन स्थान या एकान्त कूप में डाल देना चाहिये जिस को कि पक्षी खा कर साफ कर दें। पारसी लोग इस मत के पक्षपाती हैं। दादाभाई नौरोजी के शव की यही अवस्था की गई थी। इसमें न तो कुछ खर्च होता है न ही दुर्गन्धि आदि के फैलने का अवकाश होता है चूंकि चील गिद्ध आदि पक्षी बड़ी शीघ्र ही इस को साफ कर देते हैं। इसलिये पांचों प्रकार के विचारों में से यही उत्तम तर प्रतीत होता है।

क्या सन्ध्या दो वार करनी चाहिये ?

अमेरिका के योगी रामचरक जी अपनी पुस्तक "हठयोगिका" के चतुर्थ भाग में इस बात को सिद्ध करते हैं कि सायं और प्रातः दो ही ऐसे काल हैं जब कि मनुष्य के शिर में प्राण (Positive) रयि ~~और विद्युत~~ (Negative) विद्युत समता की दशा में होती है। ज्यों २ सूर्य्य चढ़ता आता है, प्राण विद्युत बढ़ती जाती है। यहां तक कि दिन के १२ बजे काम करने वाली यह विद्युत पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो कर दुपहर ढलते ही ढलनी प्रारम्भ होती है। और रयि विद्युत बढ़ने लगती है। यहां तक कि सूर्य्यास्त के समय शिर और शरीर के भीतर दोनों प्रकार की विद्युत समता की दशा में फिर हो जाती हैं। ज्यों २ अन्धकार बढ़ने लगता है रयि विद्युत बढ़ने लगती है और बढ़ते २ रात्रि के १२ बजे पूर्ण अवस्था को पहुंच जाती है। इसके पश्चात फिर वह घटने लगती है। और प्राण विद्युत बढ़ने लगती है- यहां तक कि सूर्योदय के समय दोनों प्रकार की विद्युत फिर समता को प्राप्त हो जाती हैं। वह यह प्रकार कहता है कि मानसिक शक्तियें रात के १२ बजे से लेकर दिन के १२ बजे तक स्वाभाविक ही कार्य करने के योग्य हैं। शरीर सम्बन्धी शक्तियां दिन के १२ बजे से लेकर रात के १२ बजे तक कार्य करने के योग्य होती हैं और यही समय शारीरिक व्यायाम आदि श्रम करने के लिये अधिक हितकारी है। सायं और प्रातः दो ही ऐसे काल हैं जब कि प्राण और रयि शक्तियां बराबर होती हैं।

इसी प्राण और रयि का दूसरा नाम सत और तम है। प्रातः और सायंकाल सत और तम की साम्यावस्था होती है। सत और तम ही प्रकाश या अन्धकार करते हैं। इस लिये महर्षियों का कथन है कि सन्ध्या काल प्रकाश और अन्धकार की सन्धि वेला का नाम है। ऐसा सत्य प्रतीत है। एक तरफ़ तो सृष्टि के राज्य में प्रकाश और अन्धकार की सन्धि सन्ध्या-समय होती है। दूसरी तरफ़ हमारे शरीर में सत और रज तमो गुण की सन्धि होने से समता अर्थात् शान्ति होती है। यह समता शरीर को केवल दो ही कालों में प्राप्त हो सकती है। प्रातःकाल होते ही सब पशु प्राणी अपने २ कार्य में प्रवृत्त होने लगते हैं। इसी समय हमारी शक्तियां भी काम करने के लिये प्रस्तुत होती हैं। रात भर के विश्राम के पश्चात् नये जन्मे हुए बालक की तरह शरीर विश्राम कर शुद्ध और निर्मल हो साम्यावस्था को प्रातःकाल प्राप्त होता है। यह समय है कि शिर और इन्द्रियों के विरोधी मन को ईश्वर के चिन्तन और योग साधन द्वारा इस की प्राप्ति में लगाया जाय....

(सम्पूर्ण)

ईश्वर तथा मुक्ति

ले. ब्र. शिवप्रसाद

यूरोपीय विद्वानों के मतानुसार चांद आदि सब पदार्थ पहले सूक्ष्म अवस्था रूप-प्रकृति में मिले हुए थे और पहले पृथ्वी, समुद्र तथा वायु मंडल आदि में भेद नहीं था। ग्रह आदि सब पदार्थ इस सूक्ष्म प्रकृति में-से निकल कर नीचे पड़े गए हैं जब कि जीवन रहित संसार का समय था। इन सब पदार्थों को नियम में रखने वाला अर्थात् ग्रह-आदिकों को नियम में सूर्य आदि के चारों ओर घुमाने वाला कोई अवश्य ही चाहिए और साइंस ने यह बता दिया है कि सब पदार्थ अभी बने हैं। इनको बनाने वाला तथा नियम में रखने वाला कोई अवश्य ही चाहिए। इसी प्रकार धर्मों को उनके क्रमानुसार रखने से यह जाना जा सकता है कि वैदिक धर्म सब पारसी, ईसाई, मुगल या मुसलमान धर्म, यहूदी धर्म, बौद्ध धर्म आदि सब धर्मों से पुराना है यह वैदिक धर्म वेद से ही है। वेद ही मनुष्यों के लिए सृष्टि के आदि में ईश्वर से बनाए गए हैं। इस लिए इस सब से पुरानी पुस्तक या (यूरोपीय विद्वानों के अनुसार) अथवा ईश्वरीय ज्ञान वेद के प्रमाणों के अनुसार "विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता" हमें मानना चाहिए कि ईश्वर ही इस संसार का बनाने वाला तथा रक्षक है। हम संसार में देखते हैं कि पृथिवी पर अंकुरादि के रूप उत्पन्न होते हैं इन कार्यों का कारण भी कोई अवश्य ही चाहिए। हम साधारण जीव इनको नहीं बना सकते इन वृक्षों का तथा पृथिवी आदि का बनाने वाला ईश्वर है जो क्लेश कर्म विपाकाशयैः-रपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः इस योग के समाधिपाद के सूत्र २४ के अनुसार अविद्यादि क्लेशों, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फल दायक कर्मों की वासना से रहित है और सब जीवों से विशेष है। इस सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान्, अनादि, अजर, अमर, नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव ईश्वर ने जीवों के निवास के लिए यह संसार अपनी इच्छा या प्रेरणा मात्र से ही बना दिया है और इस में जीवों के सुख के लिए सब साधन दिए हैं यथा पीने के लिए पानी, श्वास के लिए हवा आदि। इन साधनों से मनुष्य असली उद्देश्य तक पहुंच सकता है और इन में आसक्त होकर अर्थात् राग द्वेष आदि में पड़ कर नीच से नीच गति को भी प्राप्त हो सकता है। सब मनुष्य इस संसार में सुख के लिए यत्न करते हैं कोई भोग विलास में मस्त रहने से ही अपना सुख मानता है कई योगी ईश्वर में लीन रहने में ही अपना सुख मानते हैं और उन्हें वास्तव में इस श्रम साध्य कार्य में आनन्द भी आता है। वास्तव में यही निश्चय योगी का सुख है जिसे प्राप्त करने के लिए उसने यह मनुष्य योनि जो सब योनियों में श्रेष्ठ है, [illegible]-प्राप्त की है। इस ईश्वर प्राप्ति के होने पर आदमियों को वास्तविक सुख होता है। यही ईश्वर प्राप्ति ही मुक्ति है। ईश्वर प्राप्ति बन्धन से छूटने पर होती है। मुक्ति का लक्षण जो स्वामी दयानन्द जी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है वह आगे लिखा जाता है–

सब दुःखों से छूटकर बन्ध रहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरते नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोगकर पुन संसार में आना "मुक्ति" है। "बन्ध" अविद्या अर्थात् अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्य शुचि सुखात्मख्यातिरविद्या-' इस पातंजल दर्शन के साधन पाद के सूत्र ५ के अनुसार अनित्य संसार और देहादि में-नित्य और अशुचि मिथ्याभाषण चोरी आदि अपवित्र कर्मों में पवित्र बुद्धि, अत्यन्त विषय-सेवन रूप भोग विलासादि दुःख में सुख-बुद्धि, अनात्मा में आत्म बुद्धि करना यह चार प्रकार का विपरीत ज्ञान अविद्या है अर्थात् "वेत्ति यथावत्तत्व पदार्थ स्वरूपं यया सा विद्या यया तत्व स्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति यया-सा ऽविद्या जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे तत्व स्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य-बुद्धि हो वह अविद्या कहाती है, निमित्त से-है। और २ पापकर्म यथा परमेश्वर की आज्ञा न पालना, अधर्म, अविद्या, कुसंग, कुसंस्कार बुरे व्यसनों में रहना मिथ्याभाषण, परोपकार न करना, पक्षपात तथा अविद्या से-न्याय धर्म की वृद्धि करनी, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना तथा योगाभ्यास न करनी, धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति न करनी आदि सब दुःख फल करने वाले हैं यह बन्ध है जिसकी आदमी इच्छा नहीं करता परन्तु उसे फल भोगने में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, मा कर्म फल हेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

इस भगवद्गीता के श्लोक के अनुसार' परतंत्र अर्थात् पराधीन होने से उनके फल भोगने-पड़ते हैं। मुक्ति के साधन ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, [redacted] तथा यम [redacted] (अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः) तथा नियम (शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि) से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों-का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि तथा अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः अविद्या, पृथक् वर्तमान बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समझना अस्मिता, सुख-में प्रीति राग दुःख में अप्रीति द्वेष और सब प्राणिमात्र को यह इच्छा सदा रहती है कि मैं सदा शरीरस्थ रहूं मरूं नहीं अर्थात् मृत्यु-दुःख से त्रास अभिनिवेश कहाता है इन पांच क्लेशों को योगाभ्यास विज्ञान से छुड़ा कर ब्रह्म को प्राप्त होना [redacted] आदि हैं। इन-मुक्ति के साधनों से हम बन्ध रहित होकर-सुखस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति कर सकते हैं जहां पर वास्तविक सुख प्राप्त होता है। मुक्ति में जीव ब्रह्म में विद्यमान रहता है और उस सर्वत्र पूर्ण सर्वव्यापक ईश्वर में अव्याहत गति से किसी भी रुकावट-के बिना आनन्द पूर्वक स्वतंत्र विचरता-रहता है परन्तु मुक्त जीव का स्थूल नहीं रहता। अब यह सब के मन में स्वतः-प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब उस-मुक्त जीव के स्थूल शरीर नहीं-क्योंकि हम-यह देखते हैं कि जो स्थूल शरीर धारण-करता है वह आनन्द से बिना किसी रुका-वट के सुख भोगता है - वह उस मुक्ति के आनन्द को जो सब आनन्दों से उत्कृष्ट-

है जो कि यदि [redacted] श्रम साध्य अर्थात् दिन-रात सारे समय ईश्वर की भक्ति में बड़े २ जंगलों में वृक्षों के मूल में कन्द मूल फल-खाकर तल्लीन होने से प्राप्त हुआ है-और जिस के लिए उसने अपने सब राग द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध और भोग विलास छोड़े हैं- कैसे भोगता है इसका उत्तर यह-है कि उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक-गुण तथा सामर्थ्य सब रहते हैं किन्तु-भौतिक संग नहीं रहता। जैसा नीचे शत-पथ कांड के १४वें मंत्र से हम जानते हैं:-

शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयंस्त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तम्भ-वत्यहङ्कुर्वाणोऽहंकारो भवति ॥

केवल सङ्कल्पमात्र शरीर होता है जैसे-शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक-के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी-शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोगलेता-है यह मंत्र से स्पष्ट है। जो मनुष्य जीव-के नाश को ही मुक्ति समझते हैं वे विचार नहीं करते क्योंकि जीव की मुक्ति का-यही है कि दुःखों से छूटकर-अर्थात्-मिथ्याज्ञान, दोष राग द्वेषादि, उत्पत्ति तथा जन्म से कुछ देर के लिए जिनका फल अन्तिम दुःख है इन से छूटकर आनन्द स्वरूप परमात्मा के तुल्य आनन्द में अपना जीवन व्यतीत करना। अब आगे-यह विचार करना है कि मुक्ति से जीव लौटकर ईश्वर में विचरते हुए सुख आनन्द का भोग करके पुनः जन्म मरण के प्रवाह में आता-

है या नहीं। पहले हमें यह विचारना चाहिए कि जन्म क्यों होता है जन्म कर्मों का फल है। यदि-किसी ने अच्छे काम किए हैं वे वह पुण्य करता-रहा है तो वह मुक्ति को प्राप्त होता है। पर जिसने बुरे कर्म किये हैं वह अपने कर्मों के अनुसार मनुष्य योनि कीट योनि आदि योनियों को भोगता है और इन्हीं कर्मों के अनुसार वह-दुःख आदि निरन्तर जन्म जन्मान्तर में-भोगता रहता है और दिन प्रतिदिन दुःख-से सताया हुआ आक्रन्दन करता रहता है और दर दर भटकता रहता है। जब आत्मा-जन्म लेता है तो उसमें पुराने संस्कार विद्यमान रहते हैं यथा- जब बन्दर उत्पन्न होता है तो पहले २ उसके हाथ ही निकलते हैं तो वह दोनों हाथों की अंगुलियों को फैलाकर अपनी पहले २ मक्खियां मारने लगता है इससे उसमें पुराने संस्कार होते हैं यह स्पष्ट-पता लगता है। और [illegible] एक उस्ताद-मनुष्य किसी हारमोनियम बजाता था जब उसका-लड़का उत्पन्न हुआ जब वह १ साल के-लगभग आयु का था तभी वह उसके साथ-बाजा बजाने तथा ताल देने लगा अभी-उसको किसी ने यह काम सिखाया भी-नहीं था। इसी प्रकार एक धनी मनुष्य की एक लड़की थी। वह अपने पिता से बहुत प्यार करती थी। वह लड़की मर गई इसके बाद कुछ दिनों के बाद वह लड़की कहीं-पुनः उत्पन्न हुई परन्तु उसे अपने पिता-तथा घर का संस्कार था इसलिए वह-वहां आई और पिता के पास आकर-बैठ गई। पिता ने पूछा कि तुम कहां से आई हो उसने कहा कि मैं यहां से आयी हूँ

और आप मेरे पिता थे इससे स्पष्ट सिद्ध है कि आदमी के अन्दर पुराने जन्म के संस्कार रहते हैं। इसी प्रकार हम देखते हैं कि जब बहुत से विद्यार्थी एक ही कक्षा में एक ही साथ पढ़ते हैं और एक ही अध्यापक उन्हें पढ़ाता है और एक ही प्रेम से सब को पढ़ाता है तो भी हम देखते हैं कि किसी की किसी विषय में एकदम रुचि हो जाती है और दूसरे की नहीं इसी प्रकार एक विद्यार्थी अच्छा पढ़ जाता है और दूसरा बुद्धू निरक्षर भट्टाचार्य ही रह जाता है इन बातों से पता लगता है कि जन्म पर पिछले जन्म के संस्कारों का प्रभाव होता है। गीता आदि में कई जगह आता है कि —

यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् में भी —

न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते इति।

इत्यादि कई वाक्य इस प्रकार के प्राचीन साहित्य में पाये जाते हैं जिनसे पता लगता है कि मुक्ति से जीव लौटकर नहीं आता। परन्तु हम मानते हैं कि वेद ही स्वतः प्रमाण हैं अन्य ग्रन्थ उपनिषद् आदि परतः प्रमाण माने जाते हैं। इसलिए हमें इसके लिए वेद के प्रमाण भी देखने चाहिएं परन्तु वेद में इसका निषेध किया है जैसा निम्न मंत्रों से स्पष्ट है जिनको स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि :—

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च।

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥

इसी प्रकार अन्य मंत्र भी दिए जाते हैं

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्त काले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥ मुंडकोपनिषद्। खंड २। मं. ६॥

प्रथम दो मंत्रों के अर्थ में यह लिखा है कि वह सब का स्वामी हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर इस संसार में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता और पिता के दर्शन कराता है। इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् के मंत्र से स्पष्ट है कि शुद्धान्तःकरण संन्यासी परमेश्वर में मुक्ति सुख को प्राप्त होकर और आनन्द को भोग कर मुक्ति की अवधि के पूर्ण होजाने पर वहां से छूटकर पुनः संसार में जन्म ग्रहण करते हैं॥ वैसे जो मुक्ति को प्राप्त नहीं होता वह बारंबार जन्म मरण के प्रवाह में अपने कर्मानुसार आता ही रहता है और उस पर पिछले संस्कारों का प्रभाव रहता है यह पहले स्पष्ट हो चुका है।



वेद पर श्रद्धा

(लेखक – ब्र॰ जगदीश)

जब हमें कोई किसी अप्रत्यक्ष वस्तु के विषय में इस प्रकार सुनाता है कि अमुक वस्तु ऐसी२ सुन्दर है तब हम उस वस्तु के विषय में जो अपनी कल्पना कर लिया करते हैं वह वक्ता की कल्पना से कहीं बढ़ कर होती है। परन्तु जब उस वस्तु को जिस के विषय में हम अब तक एक बड़ी सुन्दर कल्पना ही किया करते थे अपनी आंखों से देख लेते हैं तब एकदम से हमें उस वस्तु से एक प्रकार की घृणा सी उत्पन्न हो जाती है और हम नाक भौं चढ़ा कर कह बैठते हैं कि – हूं यही था वह जिस के विषय में इस इस प्रकार से सुना करते थे बस जी बस देख लिया इत्यादि। इस प्रकार उस वस्तु के विषय में हमारे ऊपर सदा के लिये एक प्रकार का बुरा प्रभाव पड़ जाता है जैसा कि स्वाभाविक ही है। इस विषय में यदि हम अपनी एक घटना सुनावें तो कोई अप्रासंगिक न होगा – पिछले साल हमारी "कुल्लू" की यात्रा हुई थी। मार्ग में जिस२ पड़ाव में हम ठहरते थे वहीं२ कुल्लू के विषय में पूछ ताछ करते थे – प्रत्येक आदमी वहां की दो चार बातें सुनाकर यह ज़रूर कह देता था कि वहां सेब बहुत होते हैं। इस प्रकार मार्ग में कुल्लू से वापिस लौटते हुए पथिकों तथा अन्य ग्रामीणों से पहाड़ी लोगों से जिन को कि अपनी ही पहाड़ी के दूसरे गांव का भी हाल ठीक२ नहीं मालूम होता था उन से भी यही उत्तर पाकर कि वहां सेब बहुत होते हैं – हम में से कुछ एक ने कुल्लू के विषय में बड़ी ही स्वर्गीय कल्पनायें कर ली थीं और वे समझते थे कि शायद कुल्लू के आस पास के पहाड़ी, जंगल सेब के पेड़ों से भरे होंगे क्योंकि मार्ग में सुनाने वालों ने यह भी सुनाया था कि वहां जिस की मर्जी आती है वही थोड़ा सा जंगल घेर कर सेबों का जंगल बाग बना लेता है जिस से कि हम में से कईयों ने यह भी कल्पना की थी कि उन के मार्गों के दोनों ओर सेब लटकते होंगे परन्तु कुल्लू पहुंच कर जब यह पता लगा कि खास कुल्लू में कुछ भी नहीं किन्तु कुल्लू से दस२ बीस२ तीस२ मील दूर किन्हीं के कुछ२ हैं जिने बाग पूरे यूरोपियनों के आधीन हैं तब उन का जो केवल स्वर्गीय कल्पनाओं के आधार बल से ही कुल्लू पहुंचे थे जो हाल हुआ होगा उस का पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं यही कि उन के दिलों पर कुल्लू ने भी एक प्रकार का बुरा —

बुरा प्रभाव पड़ गया। परन्तु इस से उस स्थान की शोभा में कोई फर्क नहीं आया अब भी हर साल हजारों यात्री वहां जाते हैं और लाभ उठाते हैं। यदि आंख ही किसी वस्तु को उलटा देखती है तो इस में उस वस्तु का क्या दोष है, यदि बुद्धि ही सदसत् का विवेक करने में असमर्थ है तो इस में किस का दोष कहलायेगा? यह हमारी ही ग़लती थी कि हमने उस स्थान के विषय में बिना सोचे विचारे अन्धों से सुन-सुना कर इतनी अधिक कल्पनायें की।

इसी प्रकार गुरुकुल की स्थापना के समय आर्यसमाज की ओर से जनता को स्नातकों द्वारा अरब में ओ३म् का झण्डा गाड़ जाना आदि की आशायें तो दिलाई थीं परन्तु जनता ने इस से भी कहीं अधिक हवाई कल्पनायें स्नातकों के विषय में कीं जिन के आगे स्नातकों का कार्य जनता को तुच्छ प्रतीत हुआ और बहुत से महानुभाव हताश होकर कह बैठे कि गुरुकुल ने कुछ नहीं किया परन्तु क्या गुरुकुल ने वास्तव में ही कुछ नहीं किया? अब इस विषय पर कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं रही। ज़माना ज्यों ज्यों बीतता जाता है, पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध से चुंधियाये हुए भारतीय दिमाग़ ज्यों ज्यों उस से दूर हटते जाते हैं त्यों त्यों गुरुकुल की आवश्यकता तथा उस की सफलता को जनता समझती जा रही है। यह जनता की अपनी ही ग़लती थी कि उस ने इतनी बड़ी कल्पनातीत आशा स्नातकों के विषय में एक दम से क्यों की? क्या जनता को यह मालूम नहीं था कि "आत्मा वै जायते पुत्रः" अर्थात् जो पुत्र होता है वह पिता का ही दूसरा स्वरूप होता है, फिर इतनी बड़ी आशा करना दुराशा मात्र ही था। वेदों के विषय में भी ठीक यही बात है। क्योंकि जब हम गुरुकुल में प्रविष्ट हुए थे उसी समय से वेदों के विषय में नाना प्रकार की बातें हम अब तक सुनते आते हैं, जिस से कि वेदों पर हमारी श्रद्धा तो बहुत हो ही जाती है परन्तु उपयुक्त उदाहरणों के अनुसार हमारी कल्पनायें भी कम नहीं होतीं। हम समझते हैं कि जब हम बड़े होकर वेद पढ़ेंगे तो हमें वेदों में से बड़ी विचित्र विचित्र बातें मिलेंगी परन्तु क्या कारण है कि हम ज्यों ज्यों वेदों के नज़दीक होते जाते हैं त्यों त्यों हमारी श्रद्धा कम होती जाती है हमारी समझ में इस का कारण भी वेदों से हमारा कल्पनातीत आशा करना ही है।

वेद पर श्रद्धा

क्यों कि वेद सत्य ज्ञान के भण्डार हैं। और सत्य ज्ञान हमेशा सीधा तथा सरल ही हुआ करता है। इसमें किसी प्रकार की पेचदार बातें नहीं हुआ करती। फिर वेदों से मनोरञ्जकता की बातों की आशा करना सर्वथा ही व्यर्थ है। हमें आश्चर्य होता है कि गीता तथा उपनिषदों पर श्रद्धा रखने वाले लोग वेदों को बच्चों की खिलखिलाहट कह देते हैं। जो कि हमारी सम्मति में ठीक नहीं है। क्योंकि उपनिषद् ग्रन्थ वेदों से लेकर लिखे गये हैं। और उपनिषदों से गीता का उद्भव हुआ है जैसा कि निम्न प्रसिद्ध श्लोक से ज्ञात होता है:—

"सर्वोऽपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल-नन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत्॥"

इस प्रकार जब गीता उपनिषदों से और उपनिषद् वेदों से निकले हैं तो वेदों पर श्रद्धा करना चाहे उनके अर्थ स्पष्ट तथा ज्ञात न हों अयुक्तियुक्त न होगा॥ गीता और उपनिषद् सरल हैं और साधारण मनुष्य की बुद्धि में आजाते हैं अतः मनुष्य उन पर श्रद्धा करते हैं। परन्तु वेद अत्यन्त गहन हैं उनके अर्थों का सरलता से ज्ञान नहीं होता इस लिये मनुष्यों को अथवा जो कि पहिले वेद पढ़ते हैं उनको श्रद्धा नहीं होती। जो श्रद्धा उनको पहिले होती है वह भी उठ जाती है॥

बड़े २ तार्किकों को भी जब वस्तु निर्णय करते हुवे कोई युक्ति नहीं सूझती थी तब वेद भी यही कह कर कि "बुद्धिपूर्वा हि वाक्यकृतिर्वेदे" अथवा "आगमोऽपि अत्रानुसन्धेयः" इत्यादि कह कर अपना पीछा छुड़ा लिया करते थे। शङ्कराचार्य जैसे तार्किक भी जब अपने युक्ति जाल से किसी को नहीं मना सकते तब श्रुतियों के ही प्रमाण देते हैं। इस प्रकार क्या इतने बड़े तार्किक जिनका तर्क तुम्हारे तर्क की समाप्ति क्या है आरम्भ होता था, बच्चों की खिलखिलाहट को अपनी युक्तियों से नहीं उड़ा सकते थे? उन्हें उसके आगे इस प्रकार बार बार अपना सिर झुकाने की क्या आवश्यकता थी।

कागज़ी-सम्पादक

कलम की कुन्त ले, अक्षर-
रूपी कीटों से कागज़ के
क्षेत्र पर पहले युद्ध करते हैं।
काली काली स्याही की गोलियां
अचूक दाग आग के बिना ही
गलियों को शुद्ध करते हैं।
रात रात दिन रात ३ में।
प्रात एक कर पत्र पत्रिकाओं
से प्रतिभा प्रबुद्ध करते हैं।
इतने हैं, पर न बाद का शान्ति
बदि कलियुगी कागज़ी-
सम्पादक बन करते हैं॥

(रसिक)

जीवन जल का निर्झर प्यारा! उस अनन्त से आता है।



भव-भँवरों में चक्कर खाकर, फिर उस में मिल जाता है॥

ऐ झरझर कर झरते हुए निर्झर! न जाने तुम किस अनन्त एवं अम्बरचुम्बी गिरिशिखर से गिरते चले आरहे हो। तुम्हें नहीं पता कि तुम्हारा यह पतन जो इस समय अत्यन्त सुहावना प्रतीत हो रहा है—तुम्हारे सत्यानाश के लिए है। यद्यपि इस समय तुम्हारा गिरना अत्यन्त सुखद एवं कमनीय दीख रहा है पर इस का परिणाम अत्यन्त भयावह है। तुम यहाँ से बह कर ऐसी जगह जा पड़ोगे जहाँ तुम्हारा माधुर्य लवण में, शैत्य बड़वानल में और चाञ्चल्य नीरवता, गम्भीरता तथा सिकता में लीन हो जायगा - उस समय कोई भी तुम्हें न पूछेगा। यदि तुमने अपना आदर्श न भुलाया तो पुनः तुम उस अनन्त के नयनों के करुणाजल बनोगे।

सोफ़िज़्म

(ले. शान्ति स्वरूप जी वि.अ.)

ग्रीस के आदिम विचारकों ने जो दार्शनिक विचार प्रगट किए हैं वे प्रायः सभी बाह्य प्रकृति सम्बन्धी प्रश्नों को हल करते हैं। उन्हों ने अन्तर्जगत यानी मानवीय विचार के बारे में कुछ भी नहीं कहा। जिस क्षेत्र में उन्होंने प्रयत्न किया उस में वे पूरी तौर से सफल हुए। उन्हों ने विचार द्वारा ही प्रकृति के उन गूढ़ रहस्यों को मालूम कर लिया था जिन्हें कि आजकल का जगत् परीक्षणों द्वारा हमारे सामने रखता है। Atomic Theory जिस पर आज हम Chemistry की science का विशाल भवन खड़ा देखते हैं, यह Theory भी तात्कालिक Leucippus के दिमाग़ में पहिले पहल आई थी, जिसे कि बाद में उसी के शिष्य Democritus ने उन्नत किया। किन्तु क्या कारण है? कि आजकल का जगत उन्हीं बातों को कहता हुआ फूला फलफूल रहा है जब कि उनकी कही हुई बातों को कुछ भी मूल्य नहीं दिया गया। इस का कारण यही है कि आज वही बातें परीक्षणों द्वारा सिद्ध होकर क्रमबद्ध विज्ञान के रूप में हमारे सामने आती हैं और हमें विवश करती हैं कि हम उन्हें मानें। प्राचीन विचारकों के मुख में ये बातें शुष्क Philosophy से बढ़कर कुछ भी नहीं थीं।

हम ने बताया कि अबतक का ग्रीस विचार सिर्फ़ बाह्य प्रकृति सम्बन्धी प्रश्नों को ही हल करता था। इस से साधारण प्रकृति के प्रश्नों को किसी भी प्रकार का लाभ नहीं हो सकता था। लोगों की ये स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि जिस बात से उनकी अपनी आन्तरिक सन्तुष्टि न हो उधर वे देर तक ध्यान नहीं दे सकते। उस समय का ग्रीक Thought भी ऐसा ही था जिसे कि मानवीय जीवन से कोई वास्ता नहीं था, अतः लोगों का दिल उस तरफ़ से हटकर उन समस्याओं की ओर झुका जो जिन का सम्बन्ध मनुष्य के आन्तरिक जीवन से है। ऐसा होना अनिवार्य था।

तात्कालिक ग्रीस की राजनैतिक अवस्था इस प्रकार के विचारों के लिये बहुत उपयुक्त थी। उस समय ग्रीस में popular party के बन गए पुरानी aristocracy के साथ लोग हुए थे, जिस का परिणाम लगातार government का परिवर्तन था।

पहिले लोग नियमों को एक दिव्य चीज़ समझा करते थे, पर अब उनके वे ख्याल नहीं रहे। वे देखते थे कि नियम बनाने वाले पक्षपात की लहर में उन्हें बनाते हैं और जब भी चाहते हैं तभी उन्हें बदल सकते हैं। इसके सिवाय दो राज्यों में एक दूसरे के विरुद्ध नियम देखने में आते थे। इन दोनों के विषय में दिव्यता के भाव कैसे रह सकते थे? समाज की इस गड़बड़ की हालत में जब कि पुराने सिद्धान्त जो कि सिर्फ रिवाज़ पर आश्रित थे और एक नई उत्पन्न हुई अवस्थाओं के सामने झुकते जाते थे, यह बिना हुए नहीं रह सकता था कि लोगों का ध्यान सामाजिक जीवन के सच्चे आधार, नियम, न्याय और आचार के जानने की तरफ़ न फिरता ~~झुकता~~। लोग व्यक्तिवाद की तरफ़ झुक गए और अपने कामों को अक्ल की कसौटी पर परखने लगे।

Sophist उन लोगों की class थी जिन्होंने जनता के अन्दर उत्पन्न होते हुए इन विचारों का खुल्लम खुल्ला प्रचार किया। Sophist लोगों की class तात्कालिक राजनैतिक अवस्थाओं की ही परिणाम थी।

उस समय में उच्च कुल में उत्पन्न हुए नवयुवक तभी अपने भावी जीवन में कामयाब बन सकते थे यदि वे देश के राजनैतिक ~~जीवन में~~ कामों में आगे बढ़ें। इसके लिये उन्हें अच्छा वक्ता बनने की ज़रूरत थी। उन्हें अपने विरोधियों का मुंह बन्द करने और audience को अपनी तरफ़ करने की ज़रूरत भी पड़ती थी, और यह काम अच्छे वक्ता ही कर सकते हैं। तदनुसार उन्हें ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता पड़ी जो उन्हें public life के लिये उपयोगी बना सकें। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये sophist लोग आगे आए। इन लोगों ने बुद्धिमत्ता की शिक्षा देना अपना पेशा बना लिया। उस समय आजकल की तरह कोई स्थिर शिक्षणालय नहीं थे अतः ये लोग जगह २ अपने शिष्यों की तलाश में घूमा करते थे। यद्यपि इन लोगों का मुख्य उद्देश्य लोगों को अच्छा वक्ता (Rhetorician) बनाना होता था किन्तु योग्यतम sophist उन्हें सब प्रकार की liberal culture दे सकते थे। इस प्रकार के हमें Prodicus आदि कुछ Sophist मिलते भी हैं जिनका ज्ञान Encyclopaedic (सर्वविषयगत) ज्ञान था

सोफ़िज़्म

ग्रीस के पुराने साहित्य में Sophist लोगों को अच्छी निगाह से नहीं देखा गया। स्वभावतः ही प्रश्न उठता है कि इन का जनता की निगाह में गिर जाने का क्या कारण है। ऊपर जो कुछ कहा गया है उस से तो इस के लिये कोई स्थान नहीं दीखता। हमें इस के दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम ये कि ये लोगों को सत्य का मार्ग नहीं दिखाते थे बल्कि ऐसी विद्या पढ़ाते थे जिस के द्वारा झूठ भी सत्य प्रतीत हो। शास्त्रार्थ में किस प्रकार विजयी हो सकते हैं ये सिखाना ही इन लोगों का उद्देश्य था। दूसरी बात ये कि ये प्रचलित रिवाजों की अवहेलना कर के हर एक बात को बुद्धि द्वारा परखने का उपदेश करते थे। वही बात ठीक है जो बुद्धि की कसौटी पर सत्य साबित हो कर दिखाए इस तरह की शिक्षा से लोगों के दिलों में individualism के भाव लहराते थे, जिस से समाज की जड़ें हिलती थीं। परम्परा के उपासक कट्टर मनुष्य इसे कभी नहीं सह सकते थे। इन कारणों से Sophist लोगों का जनता की निगाहों में गिर जाना स्वाभाविक ही था।

कुछ भी हो Sophist लोगों ने उस्ती गड़बड़ा ही दी जिस की प्रबल धारा को अपने स्थान से न हिलने वाली कट्टर चट्टानें नहीं रोक सकती थीं। laws के प्रति पवित्रता के पुराने भाव अब नहीं रहे। बुद्धि की कसौटी पर वे अपवित्र साबित हुए, अतः लोगों का उन पर से विश्वास सा जैसा उड़ गया, पर उस खाली स्थान को भरने के लिये कोई दूसरी चीज़ नहीं आई। फिर भी पुराने प्रभाव का परिणाम इतना अवश्य रहा कि लोगों ने दैवी और बनाए हुए नियमों में भेद कर लिया। पहिले पवित्र और दूसरे साधारण समझे जाने लगे। यदि ज्यों २ reason तरक्की करती गई लोग इस विश्वास पर भी स्थिर नहीं रह सके, और इस परिणाम पर पहुंचे कि दैवी नियम भी बदले जा सकते हैं। जब देवी देवताओं पर ही श्रद्धा न रही तो फिर दैवी नियमों पर कहां से श्रद्धा हो? इस का स्वाभाविक परिणाम यही हुआ कि लोग कहने लगे कि वही काम करना चाहिये जिससे अपना भला हो। इस तरह के विचार society के परम शत्रु हैं।

Society रहे या ऐसे विचार ही रहें। एक बात हो सकती है दोनों नहीं। हम नहीं कहते कि इन विचारों के लिये पूरी तौर से Sophist लोगों को ही दोष देना चाहिये। हमारी समझ में ये उस समय का स्वाभाविक परिणाम होना ही था, हां Sophist लोगों ने उस परिणाम को अपने समय से कुछ पहिले ही लाकर खड़ा कर दिया। ———

लोग कहने लगे कि just यही है जो कमज़ोर पर शासन करे, अर्थात् 'might is right'? उस जमाने का मुख्य सिद्धान्त बन गया। एक मनुष्य जिस के पास शक्ति है वह हमारे किसी नियम की ज़रा सी भी परवाह नहीं करता। इस तरह की प्रवृत्तियां तात्कालिक ग्रीक सोसायटी के लिये बड़ी ही घातक थीं। यद्यपि ये खुल्लम खुल्ला अपने प्रगट रूप में नहीं आई थीं, पर वायुमण्डल इन विचारों से परिपूर्ण था।

कुछ लोग शायद इस Sophistic period को black period का नाम दें पर हमारी समझ में वह ग्रीस का वह काल था जो कि सूर्योदय से पूर्व आकाश का होता है। ग्रीस की उन्नति की वह सुनहली उषा थी जिस ने कुछ काल के बाद ही उदय होकर सारे संसार को अपने प्रकाश से प्रकाशित करना था। कुछ लोगों ने धोखे में उस उषा काल को सायंकाल समझ लिया। ——— खैर

Sophist लोगों की कड़ी समालोचना ने ग्रीस में इस युग को उपस्थित किया

जो सोसायटी सिर्फ पुराने रिवाजों को ही परम्परा से निबाहती चली आती है उस की अपनी वृद्धि की शक्ति बिल्कुल मारी जाती है। आदमी को असूल जानने चाहियें, असूल ही रिवाजों को शुद्ध करता है। सिर्फ रिवाज़ पर आश्रित कभी कोई नई बात नहीं सोच सकता। वह परिवर्तन के अकस्मात् आ पड़ने पर अपने आप को नवागत अवस्थाओं के सांचे में नहीं ढाल सकता। वह किं कर्तव्य विमूढ़ सा होकर इधर उधर छिपने का स्थान ढूंढने लगता है। मतलब सोसायटी और रिवाजों से अपनी अक्ल को अधिक मुख्यता देने पर ही उन्नत हो सकता है। पर इस के अन्दर कुछ मुश्किलें भी हैं उन्हें सुलझाने का काम Socrates ने किया।

Socrates ने आकर बताया कि आदमी समाज के सब नियमों का पालन करता हुआ भी किस प्रकार Reason को मुख्यता दे सकता है। Socrates ने society और Reason को मिलकर रहना सिखाया।

अनन्त दर्शन.

(लेखक ब्र० महावीर)

अनन्त का अर्थ है असीम, निस्सीम या सीमारहित। असीम की कल्पना क्षुद्र दिमाग की उपज नहीं वह तो एक ऊंचे दिमाग का विलास विस्तार या प्रपञ्चमात्र ही है। यहां 'मात्र' शब्द का प्रयोग जान बूझ कर किया गया है क्योंकि कल्पना द्वारा असीम या अनन्त पदार्थ का अनुभव किया जा सकता है, दर्शन नहीं। संसार के सब दर्शन-विषयक पदार्थों में कोई विषय ऐसा नहीं जिसे कि हम अनन्त कह सकें या जिसका अपनी पार्थिव ज्ञानेन्द्रियों या कर्मेन्द्रियों द्वारा संकेतमात्र भी कर सकें। सब पदार्थ ससीम हैं काल या देश द्वारा परिच्छिन्न हैं। हमें किसी भौतिक पदार्थ में कालकृत या देशकृत असीमता की विद्यमानता का अनुभव सम्भव है किन्तु सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक असीमता या अनन्तता का निश्चय किसी भी दृष्टिगोचर पदार्थ में हम नहीं कर सकते।

वैसे तो जगत् के सभी पदार्थ एक दूसरे से छोटे बड़े हैं। सभी पदार्थों में लघुता या गुरुता सापेक्ष है। तथापि इन स्थूल इन्द्रियों के साधन के द्वारा ही लघुता या गुरुता की चरमसीमा का निश्चय नहीं किया जा सकता। इनकी पहुंच दूर तक नहीं क्योंकि ये सीमाबद्ध हैं।

इस वैज्ञानिक या जड़वाद के युग में भी केवलमात्र प्रत्यक्ष या इन्द्रियजन्य ज्ञान पर ही पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। कट्टर से कट्टर प्रत्यक्षवादी भी गोचर-प्रत्यक्ष पर ही केवल मात्र अवलम्बित नहीं रह सकता। उसे इस जड़वाद की चकाचौंध में कलाविज्ञान इस इन्द्रियातीत जगत् की सैर करा सकता है जिसका कि आभास मात्र भी उसको ये सर्व-भाव-भावित भौतिक इन्द्रियें नहीं करा सकतीं। अनेकविध दूरवीक्षणादि यन्त्रों द्वारा उसे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगेगा कि केवलमात्र यही जगत् नहीं है किन्तु इसके पीछे पर्दे के भीतर भी एक सूक्ष्म-जगत् अवश्य विद्यमान है।

अस्तु, यहां तात्पर्य इतना ही है कि मनुष्य इस विषय में सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतर वस्तुओं का ज्ञान अपने यन्त्रादि पार्थिव साधनों की सहायता से यथाकथंचित्

कर सकता है। अतएव उसे इन स्थूल इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न ज्ञान को ही सब कुछ मान कर सन्तुष्ट हो जाना चाहिये किन्तु इस स्थूल पर्दे के भीतर छिपे हुए सूक्ष्म तत्वों के आविष्कार करने का भी अथक प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु अत्यन्त स्थूलता (विभुता) तथा अत्यन्त सूक्ष्मता (अणुता) की पराकाष्ठा का ज्ञान तो सूक्ष्म से सूक्ष्म दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता से भी नहीं सकेगा, अतएव इसके लिये तो किसी अन्य ही मार्ग अथवा उपाय का अवलम्बन करना चाहिये।

प्रश्न उठता है कि यदि हम अपने अल्प शक्ति वाले उपायों तथा साधनों के द्वारा चरम-सीमा (असीमता या अनन्तता) की प्राप्ति नहीं कर सकते तो क्या इसकी सत्ता ही नहीं है? अथवा यदि सत्ता है तो उसका प्राप्ति-उपाय क्या है? उत्तर मिलता है कि है - अवश्य है और उसका प्राप्त्युपाय भी है।

यह निश्चित है कि मनुष्य अपने इन भौतिक साधनों के द्वारा असीम पदार्थ का अनुभव नहीं कर सकता। अतएव इस प्रकार का अनुभव किसी अभौतिक पदार्थ से ही होना चाहिये। मनुष्य की विविध प्रकार के भौतिक ज्ञान का साधन दश इन्द्रियां (पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा पांच कर्मेन्द्रियां) प्राप्त हैं। इन दसों इन्द्रियों की सहायक ११वीं इन्द्रिय मन है। इस मन-इन्द्रिय में अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा कुछ अपनी विशेषता या विलक्षणता भी है। इसे शास्त्रकारों ने उभयात्मक इन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय) माना है। अतएव इसका आधिपत्य दोनों प्रकार की इन्द्रियों पर है। परन्तु इस विशेषता से भी बढ़ कर इसमें एक और विशेषता है। वह है भौतिक पदार्थों के साथ साथ अभौतिक अर्थात् आध्यात्मिक जगत के अनेक पदार्थों के दर्शन कराने की। इसी मन की सहायता से मनुष्य ने अपने स्वच्छ बुद्धि के प्रकाश में अनन्त की कल्पना की है॥

मन का प्रधान गुण है कल्पना या तर्कना। मनुष्य का मन सब प्रकार के पदार्थों में तथा ज्ञानों में सापेक्षता अथवा सापेक्ष लघुता या

गुरुता का अनुभव करते करते अनन्तता में लीन हो जाता है। अर्थात किसी पदार्थ के किन्हीं गुणों को लेकर सापेक्ष्य बुद्धि से उसको और के पदार्थों में गुणों की लघुता या गुरुता का अनुभव करते करते अनन्त में विराम पाता है। इसी प्रकार अनन्त की उत्पत्ति हुई है। दार्शनिकों ने यद्यपि इस विषय पर अनेक प्रकार के मत या सिद्धान्त स्थिर किये हैं तथापि इस विषय पर सब सहमत हैं कि यदि सब पदार्थों में से किसी पदार्थ में सब गुणों का पूर्णता में उच्च से उच्च समन्वय हुआ है तो वह एक ही है।

इस प्रकरण में भारतीय आर्य दार्शनिकों के मत या सिद्धान्त का उल्लेख करना शायद अनुचित या अप्रासंगिक नहीं होगा।

इस पुण्य भूमी भारतवर्ष में अनेक उच्चकोटि के दार्शनिक हो चुके हैं, जिन्होंने अपने अपने ढंग से अनन्त की अन्वेषणा की है। स्वाभाविक रीति से यह स्पष्ट है कि इन दार्शनिकों के सिद्धान्त समकोटि के अर्थात एक ही प्रकार के मत को लिये हुए नहीं है। वे अलग अलग हैं, और उनकी गति भी भिन्न भिन्न है। इस सम्पूर्ण दार्शनिक-मण्डली में से केवल छ दार्शनिकों के दर्शन ही विशेष उपादेय तथा महत्व के हैं। ये दर्शन आस्तिक दर्शनों के नाम से विद्वत्समाज में परिचित हैं। इनकी संज्ञा तथा इनके कर्ता का नाम क्रमशः नीचे दिया जाता है।

दर्शन संज्ञा	कर्ता का नाम
न्यायदर्शन	गौतमाचार्य
वैशेषिक दर्शन	कणाद मुनि
सांख्य दर्शन	कपिलाचार्य
योग दर्शन	पातञ्जलि मुनि
वेदान्त दर्शन	कृष्णद्वैपायन व्यास
मीमांसा दर्शन	जैमिनि मुनि

न्याय और वैशेषिक तथा सांख्य और योग का सिद्धान्त की दृष्टि से प्रायः गौण ही मतभेद है। एवं वेदान्त तथा मीमांसा शास्त्र के सिद्धान्त भी परस्पर भिन्न नहीं। इन तीनों कोटिगत सिद्धान्तों को न्यायसम्प्रदाय, सांख्य सम्प्रदाय तथा वेदान्त-सम्प्रदाय के नाम से पुकारा जाता है। इन तीनों में अनन्त के स्वरूप का विवेचन भिन्न भिन्न प्रकार से किया गया है। इनके प्रतिपाद्य विषय भी मुख्यतया तीन हैं। प्रकृति, परमात्मा तथा जीवात्मा।

प्रतिपाद्य विषय से यह तात्पर्य नहीं कि वे आवश्यक रीति से इन तीनों की सत्ता को स्वीकार करते हुए अपनी विवेचना करते हैं। किन्तु यह सत्य है कि इन की विवेचना का आधार ये ही तीन तत्व हैं। यद्यपि न्याय-दर्शन तीनों की सत्ता को स्वीकार करता है तथापि वह तीनों को ही सब दृष्टियों से अनन्त मानने के लिये कदापि तय्यार नहीं। इसके मतानुसार जीवात्मा तथा प्रकृति स्वरूपेण अनादि तथा अजन्मा होने के कारण यद्यपि अनन्त हैं तथापि वे बहुत से गुणों की दृष्टि में अनन्त नहीं-अपूर्ण हैं। यथा-प्रकृति में चेतनता का लेशमात्र भी नहीं, चेतनता की चरमसीमा का होना तो कहां सम्भव है। और उसकी पारिणामिक अनित्यता तो स्पष्ट ही है। जीवात्मा में यद्यपि चेतनतादि सब गुण विद्यमान हैं तथापि वे अपूर्ण हैं अनन्त नहीं। अनन्त यदि है तो वह एक, और वे हैं सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा। सांख्य दर्शन स्वतः परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता वह अनन्तता की पराकाष्ठा को प्रकृति में ही मानता है। किन्तु इतना होते हुए भी उसके सम्प्रदाय मात्र को निरीश्वरवादी नहीं कहा जा सकता। इस सम्प्रदाय के दूसरे दर्शन योग ने ही प्रकृति में सत्ता तथा चेतनता की असम्भवता को स्वीकार करते हुए "तत्र सार्वज्ञ-बीजम्" इत्यादि सूत्रों द्वारा स्पष्ट शब्दों में सर्वज्ञ परमात्मा की सत्ता को स्वीकार किया है। वेदान्त ने तो इनसे भी दूर की सोची है। इसने एक सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक अनन्त भण्डार से ही इस विश्व-ब्रह्माण्ड की रचना की विवेचना करते हुए जीवात्मा तथा प्रकृति की सत्ता को केवल मायापूर्ण तथा भ्रमपूर्ण बतलाया है। इसके मत में सब माया है- भ्रम है- वास्तविकता है तो केवल एक सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म की। अतएव सब दर्शनों का ध्येय एक अनन्त की प्राप्ति में ही है। दर्शनशास्त्र की दार्शनिकता इसी तत्व के आविष्कार में सार्थक हुई है। इस तत्व के आगे भी दार्शनिक बुद्धि की पहुंच है या नहीं यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। मेधा (धारणावती या स्वच्छबुद्धि) के प्रकाश में तत्वों का आविष्कार करने वाला दार्शनिक कह उठता है- अपार-अनन्त-ब्रह्म-। भक्ति रस में भ्रमता हुआ भक्त कह उठता है, अपार-ब्रह्म--अनन्त-। दोनों ध्वनियों के सामुख्य होते ही आकाशमण्डल तुमुल ध्वनि में गूंज उठता है, अपार-- ब्रह्म-- अनन्त॥ ओं शान्तिः - शान्तिः - शान्तिः - ॥

छान्दोग्योपनिषद्

(ले. ब्र. देवदत्त)

भारत वर्ष के धार्मिक साहित्य में उपनिषदों का बड़ा ऊंचा स्थान है। वेदों से उतर कर उपनिषदें ही हैं जो कि मनुष्य को कुछ आध्यात्मिक उपदेश देती हैं। वेदों की अपेक्षा उपनिषदों की भाषा भी अधिक सरल तथा सरस और अनुकूल होती है इसलिए वेद को पढ़कर समझने वालों की संख्या से बढ़कर उपनिषद को समझने वालों की है। उपनिषदों का आध्यात्मिक ज्ञानामृत को पीकर ही योरोप के प्रसिद्ध विद्वान शोपनहार ने कहा था कि मुझे सारे जीवन में ऐसी शान्ति कभी नहीं प्राप्त हुई जो उपनिषद् पढ़ कर हुई है। पाश्चात्य दर्शन जहां समाप्त होता है वहां से भारतीय दर्शन प्रारंभ होता है। इस प्रकार इतना स्पष्ट है कि यदि हम चाहें तो उपनिषदें शीघ्र ही समझने में आ सकती हैं।

आधुनिक विद्वान लोगों का यह विचार है कि कठिन से कठिन तथा नीरस से नीरस विषयों को मनोरंजक रूप में लाकर पढ़ाया जाय। इस के लिये वे अनेक प्रकार के यत्न भी करते हैं। बालकों को भी सरल तथा मनोरंजक पुस्तकें लिखकर नीरसों को रोचक बनाकर दिखाते हैं। ऐसी अवस्था में हमारे सामने भी यह प्रश्न आता है कि कोई ऐसी विधि निकाली जाय जिससे कि उपनिषदों की सरलता और मनोरंजकता बढ़ जाय। यों तो उपनिषदें सरस हैं और अनेक में मनोरंजकता बढ़ाने के लिये भिन्न २ प्रकार की विचित्र कहानियां आती हैं परन्तु इस लेख में हम छान्दोग्योपनिषद् के कुछ एक प्रपाठकों को ही लेकर चलेंगे।

इन उपनिषदों में छान्दोग्य बड़ी उपनिषद् समझी जाती है। इसमें कुल आठ प्रपाठक हैं और प्रत्येक प्रपाठक में कुछ कुछ खण्ड हैं और प्रत्येक खण्ड में कुछ कुछ श्लोक हैं। प्रथम प्रपाठक में १३ खण्ड, द्वितीय में चौबीस, तृतीय में उन्नीस, चतुर्थ में सत्रह खण्ड, पंचम में चौबीस, षष्ठ में सोलह, सप्तम में छब्बीस और अष्टम में पन्द्रह खण्ड हैं। हम अपने पाठकों के सामने चतुर्थ खण्ड से लेकर अन्त तक प्रकाश डालने का यत्न करेंगे। इस से पाठक इस उपनिषद् को भली प्रकार समझ सकेंगे।

चतुर्थ प्रपाठक में कुछ कथाओं द्वारा कुछ आध्यात्मिक उपदेश दिया गया है।

(१)

जानश्रुति पौत्रायण नामक एक बड़ा भारी दानी पुरुष था। [illegible] [illegible] एक बड़ा दानशील था। उसने अपने राज्य में स्थान स्थान पर धर्मशालायें तथा सदाव्रत खुलवा दिये। एक बार रात को वह सोया हुआ था तब उसने स्वप्न में दो हंसों को उड़ते हुए देखा। उनमें से पिछले हंस ने अगले को सम्बोधन करते हुए कहा कि तुम इधर से मत जाओ, तुमको मालूम नहीं कि इधर तो पुण्यात्मा जानश्रुति का यश फैला हुआ है - यदि वहां पहुंचोगे तो भस्म हो जाओगे। इस पर अगले ने कहा कि जानश्रुति तो ऐसा नहीं है परन्तु जो "रैक्व" है वह ऐसा है। जिसके विषय में "यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनं सर्वं तदभिसमेति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति।"

अर्थात् जैसे कृत के जीतलेने पर उसके नीचे के सब पांसे जीत लिए जाते हैं वैसे ही रैक्व अकेला ही इतने सुकर्म करता है कि सम्पूर्ण प्रजाद्वारा किए गए उत्तम कर्म भी उससे बढ़कर नहीं होते। (प्राचीन काल में एक खेल खेली जाती थी जिसमें कि खेलने के लिये पांसों या इसी प्रकार की किसी और वस्तु का प्रयोग करते होंगे। इन पांसों में सबसे बड़ा पांसा 'कृत' नाम से कहा जाता था। उस कृत को जीत लेने पर सब पांसे विजित समझे जाते थे। उसी को उपमा रूप से यहां दर्शाया गया है।) - ऐसा कहा गया है। प्रातः काल उठ कर राजा को इस बात का ध्यान आया और उसने एक चपरासी को 'रैक्व' की खोज करने के लिये कहा। वह मनुष्य सारा शहर ढूंढ आया परंतु उसे रैक्व का कुछ भी पता न चला। तब राजा ने उसे कहा कि ब्राह्मणों के मुहल्ले में जाकर देखो वह वहां ही मिलेगा। इस पर वह राजकर्मचारी उधर ही गया। वहां उसने देखा कि एक मनुष्य गाड़ी की छाया के नीचे बैठा हुआ खाज कर रहा है। पूछने पर पता लगा कि रैक्व उसी का नाम है। उसने आकर राजा को सूचना दी कि महाराज! रैक्व का पता लग गया है। इस पर राजा ६०० गौएं तथा बहुत सा रुपया साथ लेकर

रैक्व के पास ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये पंहुचा परंतु रैक्व ने सब धन लौटा दिया और राजा को साफ कह दिया कि ये धन तुम अपने ही पास रखो। परंतु राजा को तो ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा थी वह उसके बिना कैसे शान्त हो सकता था इस लिये दूसरी बार फिर एक हजार गौएं तथा १००० ही निष्क (उस समय की प्रचलित मुद्रा) और एक कन्या को साथ लेकर आया। इस बार रैक्व ने सब कुछ स्वीकार कर लिया और राजा को उस कन्या द्वारा ही उपदेश दिलाने का आदेश दिया

इस पहली घटना से अनेक प्रकार के परिणाम निकाले जा सकते हैं उन सब को न निकाल कर हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इससे प्राचीन समय के राजा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये कितने उत्सुक रहते थे स्पष्ट है। इसके लिये वे योग्य व्यक्ति की तलाश में रहते थे चाहे वह कोई भी पेशा क्यूं न करता हो। आजकल राजा शक्तिवान के पास उपदेश लेने के भाव से जाने की साहस कितनों की होती है। सच तो यह है कि अब न वैसे राजा ही रहे हैं न ऋषि जन इसलिये कौन किसके पास जावे?

इसके बाद राजा को एक उपदेश दिया गया जिस में उसे संवर्ग के विषय में बतलाया गया था। संवर्ग का अर्थ है सब को ग्रसने वाला। सारे संसार का संवर्ग वायु को बतलाया गया है चूंकि वायु ही सब का आधार है यदि वायु न हो तो ये चीजें नियम में नहीं रह सकती। परन्तु हमारे शरीर में प्राण को संवर्ग कहा गया है चूंकि वही सब इन्द्रियों को ग्रसने वाला है।

xx xx xx

(२)

इस के बाद एक छोटे से दृष्टान्त के द्वारा उपनिषद्कार ने यह दर्शाया है कि ब्रह्मचारी को भिक्षा देना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। शौनक और अभिप्रतारि नाम के दो मनुष्य भोजन खाने के लिये तैयार हो रहे थे। भोजन परोसा जा रहा था इसी बीच में एक ब्रह्मचारी भिक्षा लेने के लिये आगया। भिक्षा मांगने पर भी उन लोगों ने ब्रह्मचारी को भिक्षा न दी। इस पर ब्रह्मचारी ने उन्हें कहा कि देखो यदि तुम मुझे भिक्षा न दोगे तो वेद कैसे पढ़ सकूंगा और यदि इसी तरह से प्रत्येक मनुष्य करता रहा तो संसार से वेद का लोप हो जायगा। इस प्रकार तुम्हें ही (भिक्षा न देने वालों को)

इस का पाप लोगा। इस पर उन लोगों ने उसे अन्न देदिया।

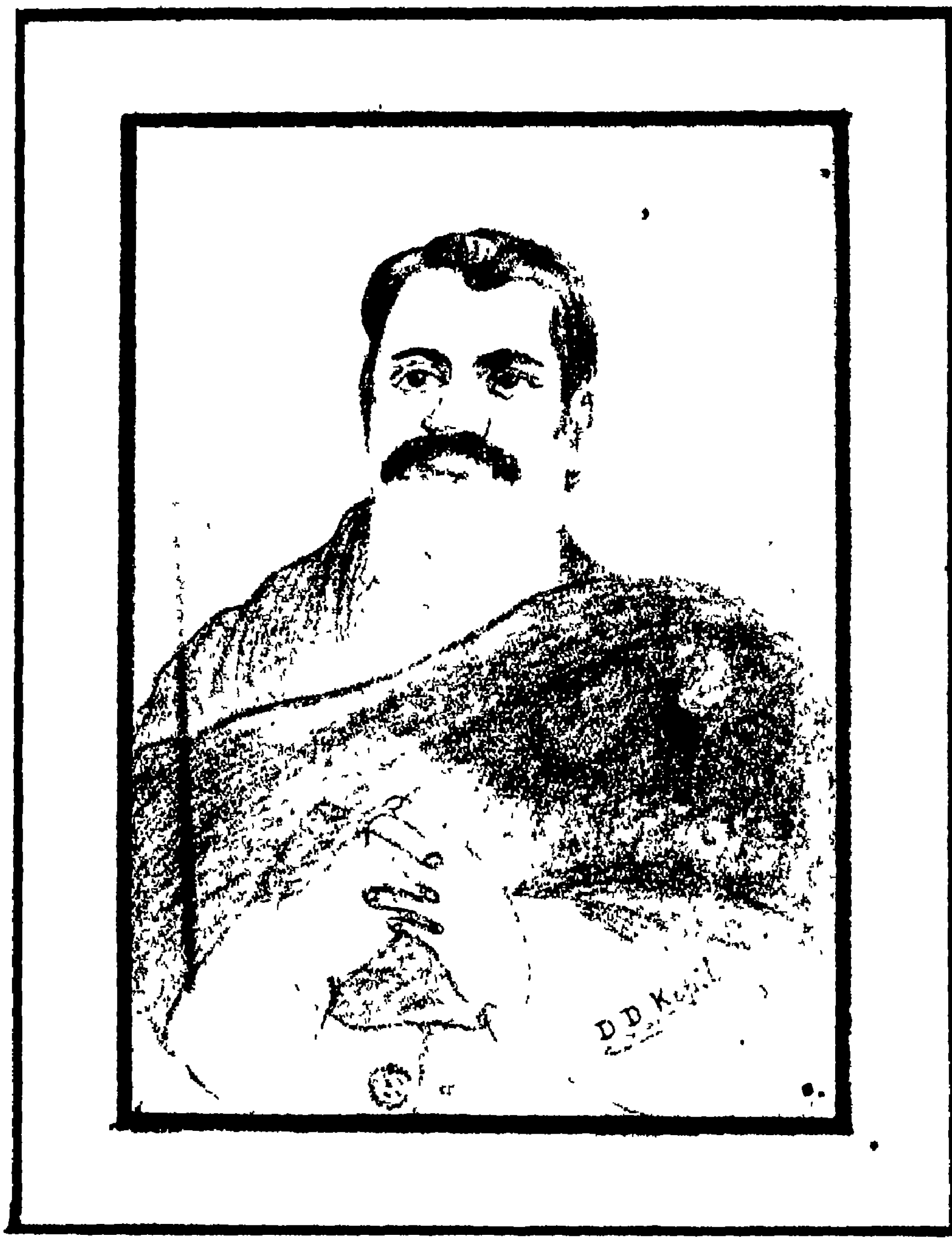
×× ×× ××

(२)

सत्यकाम जाबाल का लड़का था। जब वह बड़ा हुआ तो उसके मन में ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति की इच्छा हुई इस लिये वह वन में गौतम ऋषि के पास गया। वहां ऋषि ने उस से कहा कि तुम पहले अपना गोत्र आदि बतलाओ तब तुम्हें मैं उपदेश दूंगा। उसने उत्तर दिया कि भगवन्! मुझे तो इस विषय में कुछ भी पता नहीं है यदि आप कहें तो मैं घर जाकर अपनी माता जी से पूछ आऊं। ऋषि ने कहा बहुत अच्छा। घर जाकर जब उसने माता से पूछा तो वे बोलीं कि मुझे स्वयं इस विषय में कुछ पता नहीं। स्वामी की सेवा करते२ तुम मुझे मिलगए थे। सत्यकाम ने लौट कर गुरु जी से ठीक २ कह दिया। इस पर गुरु ने कहा कि 'हो न हो तुम ब्राह्मण ही प्रतीत होते हो अब्राह्मण इसतरह की बात नहीं कहसकता। और उसे १०० गौएं देकर कहा कि जाओ जंगल में रहो और इन की हज़ार बना लाओ। १० वर्ष तक वह वन में रहा हज़ार होजाने पर ऋषभ, अग्नि:, मद्गु: और हंस ने उसे १६ कलाओं का उपदेश दिया।

नाम उपदेष्टा	१६ कलाएं जिनका उपदेश किया				कला का नाम
ऋषभ	प्राची	प्रतीची	दक्षिणा	उदीची	प्रकाशवान्
अग्नि:	पृथ्वी	अन्तरिक्ष	द्यौ:	समुद्र	अनन्तवान्
हंस	अग्नि:	सूर्य	चन्द्र	विद्युत्	ज्योतिष्मान्
मद्गु:	प्राण	चक्षु:	श्रोत्र	मन	आयतनवान्

प्रश्नोपनिषद् में प्राण, श्रद्धा, ख, वायु, ज्योति:, अप्, पृथ्वी, इन्द्रिय मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम यह १६ कलाएं गिनाई गई हैं। इन दोनों का परस्पर क्या सम्बन्ध है इस पर हम फिर कभी विचार करेंगे।



केशव चन्द्र सेन

(चित्रकार - ब्र॰ देवदत्त कपिल)

देश वासी श्री केशव चन्द्र सेन जैसे वीरवर करते समाज दोष दूर हैं।
घोर तम नाश कर धर्म का प्रचार कर भक्ति का आदर्श धर विचारों से पूर हैं॥
ब्रह्म समाज को धर्म की लाज को आत्मा के राज को फैलाने में चूर हैं
ऐसे ऐसे भक्तवर भारत के ईश्वर उपजाओ घर घर देश के जो शूर हैं॥

वेद विषयक विचार

(ले. ब्र. ईश्वर दत्त)

आर्य समाज के नियमों से तीसरे वेद सम्बन्धी तीसरा नियम वेद महत्व का है। वेद आर्यसमाज का प्राण है, इसी के बल पर हिन्दू मतान्तर्गत विविध सम्प्रदायों से, आर्यसमाज शास्त्रार्थ समरस्थली में लड़ता है और विजय प्राप्त करता है। इसी वेद के अध्ययन को अखण्डित रखने के लिये इस तीसरे नियम की आवश्यकता थी जो महर्षि ने पूर्ण की। पर आज आर्यसमाज को हुये ५० वर्ष से ऊपर बीत चुके हैं इसने वेद प्रचार तथा वेद के पठन पाठन को कितना चलाया है यह किसी भी विचारक से छिपा नहीं। यद्यपि बहुत से ऐसे सज्जन आर्य पुरुष हैं जो प्रतिदिन किसी किसी अंश तक वेद का पाठ करते हैं, गुरुकुलों को देखकर हम कह सकते हैं कि आर्यसमाज ने किसी अंश तक इस नियम के पालने में अवश्य सफलता प्राप्त की है, जैसे स्वामी जी के समय से पूर्व पहले की अपेक्षा लोगों का ध्यान वेद की ओर गया है, पर तो भी जैसी सफलता आर्यसमाज को मिलना चाहिये था उतना उसने न होता था। इसका मुख्य कारण उसका अपना महत्व का है। जिन महानुभावों के कन्धों पर आर्यसमाज का भार रक्खा गया है उनका ध्यान वेद प्रचार की ओर न जाकर परस्पर की मानापमान की कलहाग्नि में जा रहा है। इस का परिणाम यह होता है कि शनैः शनैः लोगों की रुचि वेद से हट रही है। एक तो वेदों के शब्दों के अर्थों का ठीक तरह से पता न होना फिर उनका न विचारने की प्रवृत्ति तो वेद पढ़ने की रही सही इच्छा भी उड़ा देती है। अस्तु - अब हमें वेदों के पठन पाठन और विचार करना है। हमें इस रीति का पता पाने का यत्न करना चाहिये जिससे वेदों का हमारी भाषा में और वैदिक शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थों का पूरा पता लग सके।

यह एक विचित्र बात दिखाई देती है कि जिन लोगों को वेद पढ़ाने का यत्न किया जा रहा है वे लोग ही वेदों का उपहास कर-

ते हैं उनका कथन है कि वेदों में किसी भी प्रकार का चमत्कारिक विज्ञान नहीं है। केवल [illegible] मंत्रों को छिन्न भिन्न कर अर्थ कर देना, अथवा परमेश्वर से प्रार्थना की प्रार्थना करने के अतिरिक्त और कुछ भी वेदों में नहीं पाया जाता। ऐसे भाव वाले अनेक वाद सुनने में आते हैं। इस प्रकार के विचारों की उत्पत्ति का कारण वेद का ठीक तरह से न समझना ही है। सच बात तो यह है कि आजकल के संसार में न तो कोई वेदज्ञाता ही दिखाई पड़ता है और न कोई समझने वाला। इस कारण यदि किसी को भी वेद पढ़ते हैं तो आते नहीं। अब हम कतिपय ऐसे कारणों पर विचार करेंगे जिन से पढ़ने वालों का मन वेद से उचाट हो जाता है।

1- लेखक की सम्मति में विद्यार्थियों को वे ही मंत्र पढ़ाये जाने चाहियें जो बहुत सरलार्थक और स्पष्ट अर्थ वाले हों। जिनका अर्थ शीघ्र बुद्धि गम्य हो और जिनमें खींचा तानी किसी भी प्रकार की न करनी पड़े। प्रायः आजकल भी यह देखने में आता है कि जो विषय साधारण बुद्धि से गम्य नहीं होता उसे हम पुस्तक [illegible] की पदवी से अलंकृत कर देते हैं। इसमें केवल विद्यार्थियों का ही दोष नहीं अपितु अध्यापक का भी कुछ अंश तक दोष है। अध्यापक को भी ऐसे मंत्रों को पढ़ाना चाहिये जिनका अर्थ उसे स्पष्ट हो गया हो। प्रायः देखने में आता है कि जिन मंत्रों का अर्थ अध्यापक को स्वयं भी समझ में नहीं आया होगा उन्हीं मंत्रों को वह विद्यार्थियों को पढ़ाने का यत्न करता है- इससे विद्यार्थियों का चित्त सन्तुष्ट नहीं हो सकता और उसका परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी लोग वेद को निरर्थक समझने लग जाते हैं।

2- सब मंत्रों का अर्थ करने में केवल ही व्याकरण का उपयोग न करना चाहिये। ~~कई एक महानुभाव ऐसे~~ ऐसा करते हैं ऐसा ही है कि केवल व्याकरण को ही सम्मति होने से निरुक्त की सम्मति ले ली जाती है पर अनुभव की साक्षी की बात का समर्थन करता है। वेदों के शब्द यौगिक तथा योगरूढि दोनों प्रकार के हैं। अतः हमें प्रत्येक शब्द की जड़ तक पहुँच कर उसका अर्थ ढूँढना चाहिये। यदि [illegible] इस दृष्टि से मंत्र [illegible] को

भी मैं न बतावे तो इन्हें न प्रकाशित हुवे रहना नहीं चाहिये। प्रायः कई आक्षेपकों का यही आक्षेप होता है कि वेद में तो सिवाय इन्द्र अग्नि-वरुण और अन्य कुछ भी नहीं। इन्हें तो रखी जाते चाहिये जो कि संसार में हमें लाभ पहुंचा सकें। अथवा जिन में अलौकिक और चमत्कारपूर्ण हों। ऐसे विचार वालों के लिये आवश्यक है कि उन्हें वैज्ञानिक मंत्र बतावे जांय। वेद के पाठ से पता चलता है कि उसमें अनेक सूक्त ऐसे हैं जिनका अर्थ बहुत कुछ रहस्यमय दीखता है उदाहरण के तौर पर ऋग्वेद के 6 मण्डल के ऐसे सूक्त-जिनका ऋषि वसिष्ठ और देवता मित्रावरुण मरुत, आप, पृथिवी इत्यादि हैं-विचारणीय हैं। इनके पाठमात्र से ऐसा मालूम होता है कि इनमें अवश्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। यदि कोई ऐसे महानुभाव जो संस्कृत और विज्ञान के पण्डित हों इन सूक्तों पर अच्छी तरह विचार करें तो अवश्य इन सूक्तों में से कि विज्ञान सम्बन्धी अनेक बातें निकल सकती हैं। इन सूक्तों में से हमें म. 6 सू. 33 सूक्त विशेष महत्व का प्रतीत होता है यदि कोई वैज्ञानिक इस सूक्त पर विचार करें तो अनुग्रह हो।

3- सबसे बड़ी कठिनाई और मुख्य कठिनाई जो हमारे सामने है वह यह है कि हमें वेदों के विशेष शब्दों के अर्थों का ठीक तरह से परिचय नहीं। अनेक शब्द ऐसे हैं जो वैदिक काल में किसी अन्य अर्थ के द्योतनार्थ आते थे और आजकल लौकिक संस्कृत साहित्य में उनका अर्थ कुछ और ही हो जाता है। यदि लौकिक साहित्य के अनुसार अर्थ किये जांय तो कहीं २ ऐसा अर्थ निकल आता है जो सर्वथा वैदिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल पड़ जाता है पर अर्थ यदि उन्हें करना चाहते हैं तो हमें उनका लौकिक ठीक वैदिक अर्थ ज्ञात नहीं होता। सो यदि किसी प्रकार खेंचातानी करके मनमाने अर्थ भी किये जाय तो वह मनको पूर्ण रूपेण सन्तुष्ट नहीं करते, अतः कठिनाई दोनों ओर ही दिखाई देती है। उदाहरण के लिये म. १० मं. सूक्त ८५ मं. को ही लीजिये -

सूर्यायाः वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्। अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते।

इस मंत्र का देवता सूर्या विवाह है ऐसा है। इस सूक्त में सूर्यादि ग्रहों की आकर्षणानुकर्षण विधि

का बताते हैं। इसी के अनुसार विवाह की क्रिया भी इसी मंत्र में की है। इस मंत्र के उत्तरार्द्ध का भाग अवश्य असमंजसता में डाल देता है। जो शब्द के अनेक अर्थ हमें निरुक्तादि वैदिक ग्रंथों की सहायता से मालूम हुए हैं। पर अघा का अर्थ कुछ पता नहीं चला। हन धातु के हिंसा और गति अर्थ भी होते हैं पर इनमें से किस अर्थ सङ्गति किस तरह से लगाना इसका फैसला करना असंभव नहीं पर कठिन अवश्य है। सायणाचार्य जी ने अघा का अर्थ मघा नक्षत्र किया है और इसका अर्थ प्रायः किया है। उनके इस अर्थ का भाव यह है कि —

पिता के दान गाय आदि पदार्थ लड़की के जाने से पूर्व मघा नक्षत्र में चले जाय। मघा नक्षत्र में पिता की दी हुई गौवें रथ से वर के घर जाने के लिये हांकी जाती हैं और फाल्गुनी नक्षत्र में [illegible] वर के घर पहुंचाने ले जाई जाती हैं।।

इस अर्थ को यदि गंभीरता से देखा जाय तो मन को सन्तुष्टि नहीं होती। क्यों कि अर्जुनी और मघा [illegible] का अर्थ वैदिक [illegible] है। पर इसलिये विवाद यदि इस अर्थ को छोड़कर साधारण दृष्टि से लें तो सीधा ही 'गऊशाला में गौवें मारी जाती हैं' ऐसा अर्थ हो जाता है जो सर्वथा वेद की शिक्षा के विरुद्ध है।

इसी प्रकार 'मित्रावरुण' शब्द भी पेचीदा सा प्रतीत होता है। इस शब्द का अर्थ सम्बन्ध कहीं कहीं पर बहुत जगह पर पाया जाता है। मित्रावरुण वर्षा करते हैं ऐसा कई जगह पर देखने में आता है। मित्रावरुण जल बनाते हैं ऐसा भी अनेक स्थलों पर देखने में आया है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यह मित्रावरुण है क्या वस्तु। हमें मालूम है कि उद्जन और ओषजन से पानी बनता है पर ~~[illegible]~~। मित्रावरुण में से किस को उद्जन और किस को ओषजन कहें — ऐसा निश्चित करना कठिन अवश्य है।

इसी प्रकार अनेक शब्द हैं जिनके विषय में कहना पड़ता है कि हमें उनके अर्थ निश्चित तौर पर पता नहीं चले। इसीलिये बहुत से व्यक्तियों का मन वेद से खिन्न हो जाता है। अतः विद्वानों का विशेष ध्यान वेद के ~~[illegible]~~ सम्पूर्ण शब्दों का ठीक २ अर्थ पता लगाने की ओर होना चाहिये। जब तक यह न होगा तब तक हम वेदों के सम्बन्ध में शंकायें नहीं मिटेंगी। ~~[illegible]~~

[illegible]

आखिर सत्य की ही विजय होगी.

के. वे. प्रकाश. दिल्ली

वैदिक मन्तव्यों की सत्यता को संसार के अनुभव स्वयमेव सत्य सिद्ध कर रहे हैं, और अवश्यमेव आखिर एक समय ऐसा भी आवेगा जब सारा संसार इन सत्य सिद्धान्तों का सच्चा अनुभव करेगा और इन को मानने के लिये बाधित होगा.

इस लेख में यह दिखाने का प्रयत्न सहित यत्न किया जायगा कि संसार में ज्यों ज्यों शिक्षा की उन्नति हो रही है त्यों त्यों मनुष्य अपनी बुद्धि से अधिक काम लेने लग गये हैं शिक्षा के साथ साथ उन की सत्य की जिज्ञासा भी बढ़ती जाती है। वे लोग अपने पितृ पैतामह के असत्य और असम्भव सिद्धान्तों को अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे हैं। और सत्य की खोज के लिये अपने समय के अधिकांश को लगाने लगे हैं।

वर्तमान संसार में चार बड़े बड़े धर्म हैं, ईसाई, इसलाम, बौद्ध, और हिन्दू. इन में से प्रत्येक धर्म का यही दावा है कि इस के सिवाय कोई धर्म सच्चा नहीं है, परन्तु आज

ओ३म् विज्ञान की उन्नति के समय में सब के अन्दर खलबली मच गई है। विज्ञान के छोटे से छोटे सत्य सिद्धान्त ने इन की पुरानी असत्य की मोटी से मोटी दीवारों को जर्जरित कर दिया है।

'आजकल यूरोप के अन्दर पुराने ईसाई मत और नये वैज्ञानिक प्रकाश के अन्दर घोर संग्राम हो रहा है। मनुष्यों का विश्वास पुरानी असम्भव कहानियों से हटता जा रहा है अधिकांश लोगों ने गिरजाओं में जाकर निमाज़ पढ़ना और इबादत करना सर्वथा छोड़ दिया है। —

सर ह्यूज़ सीसल ने १५ मार्च सन १९०६ में अपने भाषण में स्पष्ट तौर पर कहा था कि, आज कल यूरोप में चारों ओर से ईमान और धार्मिक विश्वास के घटने के चिन्ह पाये जाते हैं। लोग गिरजों में नहीं जाते, यदि जाते भी हैं तो राग सुनने अथवा किसी अन्य अभिप्राय से जिसका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इस बात की सब से बड़ी साक्षी यह है कि लोगों की धर्म के विषय में विद्वानों की शंकाएं बहुत बढ़ गई हैं। —

समाचार पत्रों में अनेक बार यह प्रकट किया जा रहा है कि, नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, इंग्लैण्ड और अमेरिका में स्वतन्त्र विचारों का बल बढ़ रहा है। संसार के इतिहास में कभी भी इतनी अधिक अवज्ञा ईश्वरीय धर्म के विषय में नहीं देखी गई जितनी आज कल यूरोप में पाई जाती है, और यह अविश्वास विज्ञान और शिक्षा ने और भी बढ़ा दिया है। ईसाई जगत के विचारों में एक भारी परिवर्तन होने का भय पैदा हो रहा है। मुख्य तया खगोल विद्या के द्वार के खुल जाने से इसे अधिक धक्का पहुंचा है।

—:—

फ्रांस गवर्नमेण्ट की सम्मति है कि देश की खुशहाली के लिये गिरजों का प्रभाव घटाना जरूरी है और इस विचार का इतना प्रचार हुआ कि यहां के बड़े २ राज कर्मचारियों ने गिरजों में जाना छोड़ दिया है, इस पर वहां के समाचार पत्र लिखते हैं कि यह दिखलाना तो सरल है कि ईसाई मत झूठा है, लेकिन हम ने इस के स्थान पर कौनसा धर्म मनुष्यों की उन्नति के लिये निश्चित किया है? हमें आजकल धर्म की शिक्षा की आवश्यकता है। न कि आक्षेप मात्र करने की — एक मरे हुए धर्म पर झगड़े और मातम करना ठीक नहीं है क्यों कि मरने को मारना शूरवीरता नहीं है। हमें एक नया धर्म खड़ा करना चाहिये जो आत्माओं को शान्ति दे सके। —

आट पादरी हरफोर्ड के बारे में १९१८ में चर्च टाइम्स में एक लेख निकला था कि वे मोजिजों के चमत्कार को नहीं मानते, ईसा की उत्पत्ति कुमारी के पेट से नहीं मानते हैं और वे समझते हैं कि यह मन्तव्य ऐसे नहीं कि जिन पर मन्तव्य की नींव रक्खी जा सके; वह मसीह का दुबारा जी उठना और फिर शरीर सहित आकाश पर जाना भी नहीं मानते।

वास्तव में ईसाई मत में परमात्मा का बहुत ही नीचा आदर्श प्रकट होता है और वे लोग इस को अनुभव करते हैं। परमात्मा का कथन

की तरह परदा नौके किनारे पर आना।
2, इब्राहीम के घर रोटियां खाना.
3 याकूब के साथ कुश्ती लड़ना.
4 प्रधान तूफान पैदा करना और फिर उस के लिये पछताना.
5 और फिर प्रतिज्ञा करना कि आगे को ऐसा न करूंगा इत्यादि बातें पर मात्मा को एक साधारण मनुष्य की तरह बतलाती हैं और उस की पवित्र महिमा को कलङ्कित करती हैं)

विद्वान ईसाई इस बात को अच्छी प्रकार से अनुभव करने लगगये हैं कि उन की धर्म पुस्तक "बाईबल" मनुष्य की आत्मा को ऊंचा उठाने के लिये किसी भी आत्मिक शिक्षा का उपदेश नहीं दे सकती। और कहां तक लिखा जाय जहां ईसाई मत में इस प्रकार की गड़बड़ी मची हुई है वह इस्लामिक मत भी निर्विवाद नहीं है, इधर दृष्टि पात कीजिये यहां भी वैसाही नज़ारा है, उस से किसी प्रकार से भी कम - गड़बड़ी नहीं है। वे लोग भी अपने मत पर ही लेख लिखते हुए बड़ी निराशा के साथ कहते हैं कि कुरान एक प्रकार का मसविदा, रोज़नामचा, और हज़रत मुहम्मद के नित्यप्रति के कानून और आज्ञाओं का एक "पॉकेट बुक" है। जिस में हज़रत साहिब आवश्यकतानुसार अपनी आज्ञाओं को बदलते और घटाते बढ़ाते रहे हैं।

मौलवी मुहम्मद ज़ाहिद M.A प्रोफ़ैसर इस्लामिया कालिज अलीगढ़ ने अपनी पुस्तक "इस्लाम और अक़्ली मत" में लिखते हैं कि मुझे आश्चर्य होता है कि आज तक भी ऐसे लोग विद्यमान हैं जो आजकल के इल्मी अक्ल के ज़माने में भी खुदा, फरिश्ते, क़यामत के दिन मुर्दों का पुनः जी उठना इत्यादि, विज्ञान से विरुद्ध बातों को मानते हैं, मज़हब सदाचार का सहायक होने के स्थान पर उसका बिगाड़ने वाला बनरहा है। और मनुष्य समझते हैं कि सिर्फ "तौब:"

इलान करते से ही खुदा गुनाहों को मुआफ़ कर देते हैं तो वे पापकर्-ने से बेफ़िकर हो जाते हैं। वास्तव में कोई जाति उन्नति को हासिल कर सकती है जिस के मज़हबी सिद्धान्त सच्चे और ऊँचे हों। इस प्रकार संसार में किसी एक धर्म की आवश्यकता है जिस के सिद्धान्त उच्च आत्मा की शुद्धता को सिखाने वाले और तीनों कालों में सत्य हों - परमात्मा इल्म और अक्ल का है इस वास्ते मुसलमानों को चाहिये कि वे काबे के स्थान पर कुदरत के देर (मन्दिर) पर चले जावें।

— ≡ —

बौद्धधर्म पर विचार करना व्यर्थ है उसकी सत्ता नाम मात्र रह गई जितनी रह गई है वह बरमा जापानादि देशों में है वहां के लोग भी अधिक ईसाई होते जाते हैं परन्तु उन भोले भाले दुखियों को खबर नहीं ईसाइयों के घर भी शान्ति नहीं है।

विदेशों में अनेक सभाएं हो रही हैं कि निश्चय किया जाय कि अब कौनसा नया धर्म जो बिलकुल सत्य हो प्रचारित किया जावे क्योंकि अपनी अपनी धर्म पुस्तकों में आत्मिक ज्ञान को दिया ढंग कोई साधन उनको दिखाई नहीं देता — उनकी उत्कट इच्छा है कि भविष्य में हमें कोई भी अन्धाधुन्द विश्वास करने वाला न कहे। ज्यों ज्यों विज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता त्यों त्यों लोग प्रत्येक धार्मिक नियम को अपने में धारण करने के लिये दलील से काम लें। — आजकल आपने देख लिया कि प्रत्येक बात तर्क की कसौटी पर कसी जा रही है। अब इल्हामी विश्वास का सर्वथा अभाव दिखाई देता है प्रत्येक मज़हबी सिद्धान्त तर्क के सामने रक्खा जाता है। अब एक तर्क के भूत ने सारे मज़हबों को तंग कर रक्खा है, लोग दिन प्रति दिन उन्हीं विचारों की ओर आ रहे हैं जिन को आर्य समाज पहले से प्रकट कर रहा है। यहां सब तर्क और विज्ञान अनुकूल हैं।

इति.

ज्ञान योग

(ले. ब्र. गौतम ...)

हमने कर्मयोग के ऊपर सरसरी नज़र मारली है अब हमें ज्ञान योग के विषय में भी कुछ पता लगाना चाहिये। ज्ञानयोग क्या है? यही यहां पर पहिले बताने का यत्न करूंगा। जिस प्रकार महान अन्धेरे कमरे में जहां कि हाथ मारा भी नहीं सूझता वहां एक दीपक जलाओ। छोटा सा दीपक इतने बड़े अन्धकार को दूर कर देता है और सर्वत्र ही प्रकाश का सञ्चार कर देता है। कमरे के अन्दर विद्यमान सब वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। और उदाहरण लीजिये— कल्पना कीजिये एक मनुष्य को यह भान हुआ कि उसकी माता का देहान्त हो गया है वह रोने लगता है और नाना प्रकार की कल्पनायें कर लेता है। बहुत से शोकमय संकल्प और विकल्प उसके दिल में उठते हैं जिससे कि उसका शरीर बहुत कृश भी हो जाता है — उसी समय उसके पास एक खुश खबरी का समाचार आजाता है कि उसकी माता जीती है और प्रसन्न है उसके एक पुत्र उत्पन्न भी हुआ है। यह तार उसके दिल के सारे दुःख को धो डालता है और उसमें आनन्द की लहरें उमड़ने लगती हैं। अब उसके दिल में पहिले से बिलकुल विरोधी संकल्प उठते हैं। एक ही क्षण में स्वल्प ज्ञान से इतना ज्यादा परिवर्तन हो गया इसी प्रकार ज्ञानयोगी कहते हैं कि जीवात्मा ~~समान~~ अज्ञान में रहने के कारण दुःखी होता है। वह अन्धकार में निवास करता है इस लिये रोता है- वह वहां से निकलकर प्रकाश को देखना चाहता है दुःख की आहों को छोड़कर आनन्द की लहरों में गोते लगाना चाहता है। जब ज्ञान द्वारा परमात्मा की ज्योति का प्रकाश उसकी आत्मा में होता है तब वह अपने को सुखी और पूर्ण समझता है।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे। न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तं अनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।"

यह है ज्ञानयोग। ज्ञानयोग द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्मयोग द्वारा भी मोक्ष की प्राप्ति होती है। दो ही मार्ग मोक्ष प्राप्ति के हैं जो कि हमारे ऋषियों ने बताये हैं। भगवान् कृष्ण इन दोनों मार्गों का अर्जुन को उपदेश करते हुवे अपनी सम्मति प्रकाशित करते हैं। गीता ५ अध्याय २ श्लोक——

सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ। तयोस्तु कर्मसन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते

अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के दो मार्ग हैं। सन्यासयोग और कर्मयोग। दोनों ही मोक्ष प्राप्ति कराने वाले हैं परन्तु इन दोनों में भी कर्मयोग सन्यासयोग की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है कर्मयोग का लक्षण श्रीकृष्ण ने इस प्रकार किया है

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगं असक्तः स विशिष्यते।

धार्मिक दृष्टि

(ब्र. गौतम देव)

यह बात यदि असम्भव नहीं तो कठिन जरूर है कि किसी मनुष्य में सहानुभूति का भाव न हो। मनुष्य जब तक अपनी मर्यादा में रहता है या जब तक उसमें मनुष्यत्व का भाव विद्यमान रहता है तब तक उसमें प्रेम सहानुभूति विश्वास और न्याय परायणता भी जागृत रहती है। कभी कभी एक धार्मिक मनुष्य को फिर ख्याल हुआ करता है वह अपने अन्दर से उस समय विचार शक्ति और न्यायपरायणता को निकाल देता है और दूसरे धर्मों का खण्डन प्रारम्भ करने लगता है। "दिया तले अन्धेरा" उसे अपने दोष दिखाई नहीं देते किन्तु वह दूसरों के दोषों की (चाहे वह वास्तव में दोष न हो) कड़ी समालोचना किया करता है। यहां इसी बात पर विचार करना है कि इस प्रकार का [illegible] कहां तक ठीक है।

हमें दूसरों के धर्मों को भी उसी दृष्टि से देखना चाहिये जिस दृष्टि से हम अपने धर्म को देखते हैं। इस्लाम धर्म यदि विश्व व्यापी धर्म नहीं तो दुनिया का ½ भाग तो जरूर ही इस धर्म ने घेरा हुआ है। परन्तु फिर भी आर्य समाजी इस धर्म का जगह जगह खण्डन करते फिरते हैं। इन लोगों को यही धर्म का अन्धा जोश जो कि अनुचित है चढ़ा हुआ है इसी कारण यह ऐसा करते हैं। इस्लाम धर्म जैसा खराब समझा जाता है वैसा खराब नहीं इसके अन्दर भी उतनी ही अच्छाइयाँ हैं जितनी वैदिक धर्म में।

इस्लाम एक खुदा की पूजा करता है। उसी खुदा को वह सर्वव्यापी सर्व द्रष्टा और सर्व शक्तिमान समझते हैं। "A belief in the unity power mercy and supreme love of the Creator is the cardinal principle of Islam, for in its essence, it is pure Theism."

जितना पारस्परिक प्रेम का भाव इस्लाम धर्म में है उतना और किसी धर्म में नहीं। आज कल भी हिन्दुओं की दशा पर ख्याल कीजिये। आप यदि कहीं किसी हिन्दू के कूप पर जाइये। आप यदि पानी मांगेंगे तो आप से पहिले यह सवाल होगा कि आप कौन हैं? इसका मतलब यह है कि आपकी जात क्या है। यदि आपकी जाति और धर्म वही है जो कि उसका है तब तो वह आपको पानी पिलायगा अन्यथा नहीं। यह अत्यन्त शोचनीय अवस्था है। वह अपने को पानी पिला सकते हैं दूसरे को नहीं। यदि हिन्दू एक परमात्मा पर विश्वास करते हैं तो वह इस बात पर भी विश्वास क्यों नहीं करते कि मनुष्य मात्र या सब प्राणी उसी एक परमात्मा के पुत्र हैं। और उसके पुत्र होने से हम सब भाई हैं। यदि वह अपने को इतना विश्व प्रेमी नहीं बना सकते तो कम से कम उनको इतना तो अवश्य ही करना चाहिये कि जितने भी हिन्दू हैं उनको तो अपना भाई समझें। परन्तु वह तो यह भी अनुभव नहीं करते। इनसे अच्छा इस्लाम धर्म है। जिसमें कि सब एक दूसरे के दुख को अनुभव करते हैं। जिससे सहानुभूति करनी चाहिये उससे सहानुभूति करते हैं। एक मुसलमान की आवाज पर हजारों मुसलमान अपना काम छोड़कर उसकी सहायता [illegible] करने आ जाते हैं।

धर्म ज्ञान:

(ब्र. गौतम देव)

कर्म का ज्ञान अत्यन्त कठिन है। "किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः"। अर्थात् कर्म क्या है और अकर्म क्या है इस बात का निश्चय बड़े बड़े विद्वान अभी तक नहीं कर सके। तो क्या मनुष्य कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय नहीं कर सकता? इस प्रश्न का उत्तर वेद भगवान् इस प्रकार बताते हैं "अश्रद्धामनृतेऽदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः"। वेद कहता है कि प्रजापति परमात्मा ने असत्य में अश्रद्धा को और सत्य में श्रद्धा को रखा है। इसी से सत्यासत्य का, कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय कर सकते हैं।

मनुष्य का चित्त जब दर्पणवत् शुद्ध होजाता है तब उसमें सत्यासत्य और कर्तव्याकर्तव्य स्वयं प्रतिबिम्बित होजाते हैं। मनुष्य उस प्रतिबिम्ब में सत्य का असली स्वरूप देखकर उसी को अपना कर्तव्य मार्ग समझे। जिस प्रकार दर्पण के बिलकुल साफ होने पर ही मुख का प्रतिबिम्ब ठीक पड़ता है और साफ न होने पर नहीं पड़ता इसी प्रकार मन जब हिंसादि दोषों से अलग होजाता है और उसमें सार्वभौम प्रेम का सञ्चार होता है तब कर्तव्याकर्तव्य स्वयं पता लगजाते हैं।

धर्म का निश्चय किस प्रकार किया जाय इसके विषय में एक शास्त्रमर्मज्ञ कवि ने लिखा है— "तर्कोऽप्रतिष्ठः, श्रुतयो विभिन्ना (स्मृतयो विभिन्ना) नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्। धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः"। तर्क को अप्रतिष्ठित इसलिये कहा गया है क्योंकि इससे परस्पर विरुद्ध बातें भी ~~सिद्ध~~ सिद्ध की जा सकती हैं। एक तार्किक व्यभिचार और हिंसादि महापापों के करने में कोई दोष नहीं यह सिद्ध कर सकता है। परन्तु उसके सिद्ध कर देने से यह नहीं मान लिया जायगा कि व्यभिचारादि करने में कोई पाप नहीं। इसी प्रकार कहीं कहीं श्रुतियों तथा स्मृतियों में भी विरोध है इतना ही नहीं परन्तु प्रसिद्ध ऋषियों के कथनों में भी विरोध है। सांख्य दर्शन के कर्ता बड़े भारी विद्वान और तार्किक हैं परन्तु वह परमेश्वर की सत्ता से इन्कार करते हैं। न्याय दर्शन के कर्ता परमात्मा जीवात्मा और प्रकृति तीनों की सत्ता को स्वीकार करते हैं परन्तु वेदान्त इन सबका खण्डन करता है और केवल ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करता है। इसी लिये अन्त में कहा है कि "धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्" अर्थात् धर्म का असली तत्व गुहा अर्थात् परमात्मा के अन्दर गुप्त है। इसलिये अपने शुद्ध आत्मा को साक्षी तथा निःस्वार्थ परोपकारी आप्त पुरुषों के पीछे चलने से ही धर्म का ज्ञान हो सकता है। क्योंकि महापुरुषों में भी किसी न किसी प्रकार की निर्बलता विद्यमान रहती है इसलिये उनसे भी आगे ईश्वरों के ईश्वर, देवताओं के देवता, परमेश्वर में मन को स्थिर करना चाहिये जहां पर किसी भी प्रकार के पतन की सम्भावना नहीं

कर्मयोग

(ब्र. गौतम देव)

कर्म योगकी श्रेष्ठता बताते हुये भगवान् कृष्ण अर्जुन को कहते हैं :—

"नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।"

अर्थात् कोई भी मनुष्य कर्म किये बगैर क्षण भर भी नहीं रह सकता क्योंकि प्रकृति के गुण प्रत्येक परतन्त्र मनुष्य को सदा कुछ न कुछ कर्म में लगाये ही रखते हैं।

मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है। वह कर्म किये बगैर नहीं रह सकता। सुषुप्ति अवस्था में जब कि सब ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां मन के अन्दर लीन होजाती हैं और मन सब इन्द्रियों के साथ आत्मा के अन्दर प्रविष्ट होजाता है उस समय भी श्वास प्रश्वासादि क्रिया जारी रहती है।

हम अपने जीवन में जितने भी कर्म करते हैं उन सब में आधे से ज्यादा कर्म ऐसे होते हैं जिन का कि हमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता। कुछ कर्म हम जान बूझ कर करते हैं परन्तु इस प्रकार से जान बूझ कर किये कर्मों में भी हमें सब याद नहीं रहते बहुत थोड़े कर्म होते हैं जिनकी कि हमें स्मृति होती है।

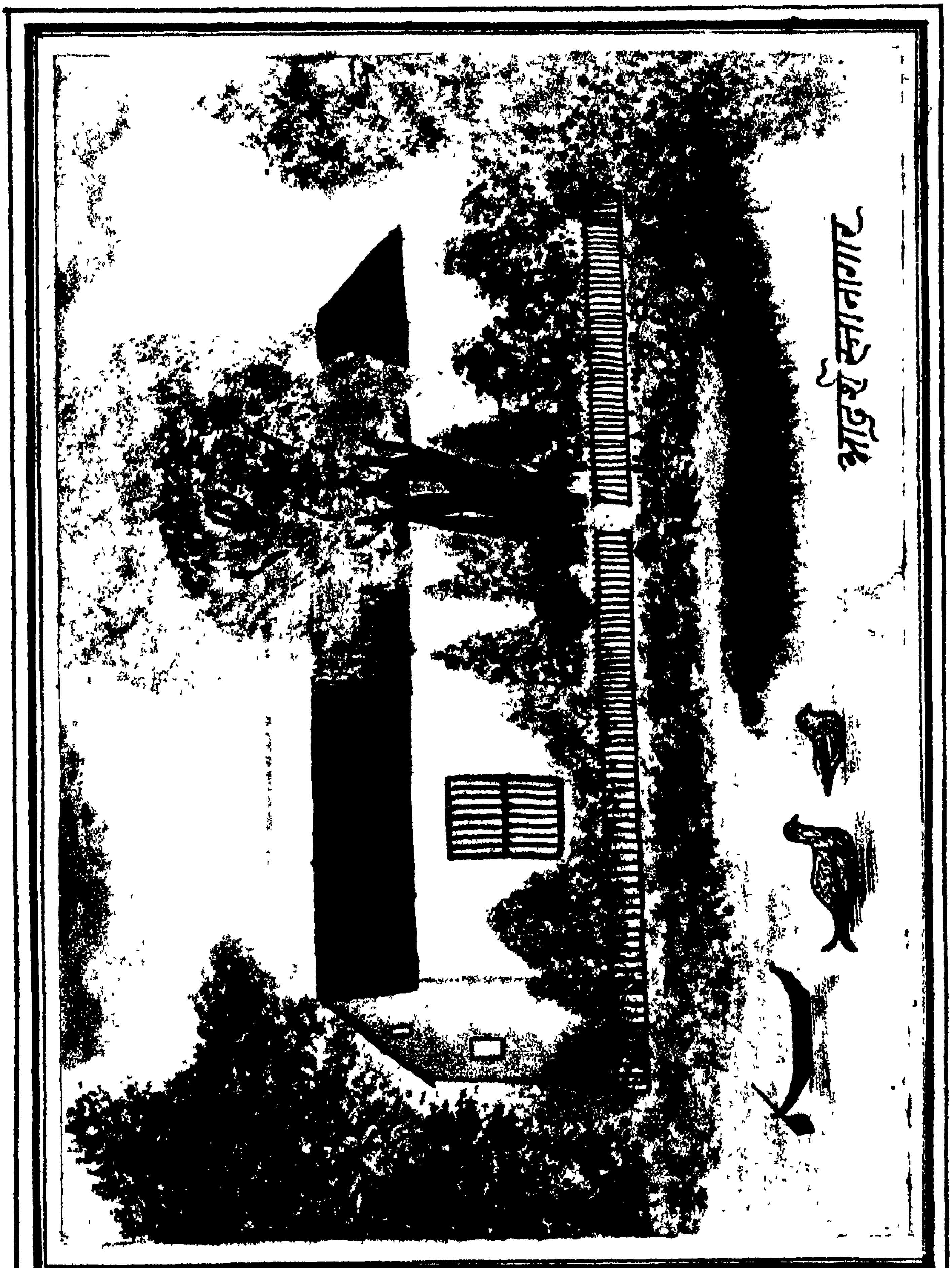
कर्म फल पैदा किये बिना नष्ट नहीं होता यह कहा जाता है। वह कर्म जो इच्छा पूर्वक फलासक्ति के कारण किये जाते हैं वे तो निश्चय से अपने फल को पैदा करते ही हैं परन्तु जो कर्म बिना किसी इच्छा से और बिना किसी ज्ञान के किये जाते हैं उनका फल नहीं मिलता। वह मरे हुये ही पैदा होते हैं। यह बात इस तरह से जल्दी समझ में आसकती है— एक वृक्ष पर हज़ारों बीज लगते हैं। आप उन हज़ारों को लेकर बो दीजिये। उन सब में से कुछ बीज तो अच्छी तरह से उग आवेंगे और उन पर फल फूल इत्यादि भी लगेंगे परन्तु उनमें से कुछ ऐसे भी उगेंगे जो कि बहुत परिश्रम साध्य होंगे। वह बहुत धीरे २ बढ़ेंगे। उन पर फल भी बहुत कम लगेंगे और जल्दी ही मुरझाकर मट्टी में मिल जायेंगे। कुछ बीजों के अंकुर पैदा होते ही नष्ट हो गए। कई बीजों में इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वे अंकुरित हो सकें। वे जमीन में मट्टी के साथ मिल जाते हैं। इसी प्रकार कुछ कर्म जो कि तीव्र इच्छा के द्वारा किये जाते हैं उनका फल जल्दी मिलता है और अवश्य मिलता है। इसी प्रकार जो कर्म साधारणतया से किये जाते हैं उनका फल भी उसी प्रकार मिलता है। तीसरे प्रकार के जो कि बिना इच्छा के किये जाते हैं जिनमें स्वार्थ का लेशमात्र भी नहीं होता जिनको निष्काम कर्म कहते हैं उनका फल नहीं मिलता। इसीलिये गीता में स्थान स्थान पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म का उपदेश दिया है

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मा कर्मफलहेतुर्भूः मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

इस लिये प्रत्येक मनुष्य को अपना अपना कर्तव्य समझ कर कर्म करना चाहिये। जो क्षत्रिय है उसे क्षत्रिय धर्म का पालन करना चाहिये इसी प्रकार सब का जानो।

पाठकगण ! यह देखिए सुन्दर स्नानागार ।
घर घर में अतिप्रेम से इस का करें प्रचार ॥१॥

रम्य वाटिका पास में वृक्षों से भरपूर ।
पक्षि विहार करें जहाँ होकर के मदचूर ॥२॥



नाव रखा जिसमें रहे सहित दण्ड पतवार !
यात्रा करने के लिए सजधज कर तैयार ॥१॥

गृह के चारों ओर हो बंगला सुन्दर एक ।
फुलवारी फूली रहे घूमें मधुप अनेक ॥२॥

महात्मा बुद्ध और स्वामी दयानन्द

(ले. ब्र. नारायण दत्त)

महापुरुषों के जीवनों के आरम्भ छोटी २ घटनाओं से ही होते हैं जिन बातों को हम रोज़ देखते सुनते हैं उन्हीं से उनके दिमाग़ बड़ी २ खोजें कर लेते हैं। न्यूटन ने वृक्ष से एक सेब को गिरते देखा और उसी से पृथ्वी के अन्दर आकर्षण शक्ति को पाया। वैज्ञानिकों ने छोटी २ घटनाओं को देख कर ही विद्युत के बहुत से सिद्धान्तों का पता लगाया। आज के हमारे वैज्ञानिक भी ऐसी छोटी २ घटनाओं पर ही गम्भीर विचार करने से इतने बड़े बन गए हैं। यद्यपि इन्होंने कोई भौतिक आविष्कार नहीं किया पर इन के आविष्कार कुछ कम महत्व के न थे

इन दोनों महात्माओं ने साधारण दुनिया की घटनाओं को देख कर ही जीवन के बड़े २ प्रश्नों को हल कर दिया। महात्मा बुद्ध ने वृद्ध-रोगी-मृतक इन पुरुषों को देखकर पूछा यह क्या है? क्या मेरी भी यही अवस्था होगी? उत्तर हां में सुनते ही महात्मा को जीवन से वैराग्य हो गया- इनसे बचने का उपाय सोचने लगा। इतने ही में सामने से एक लंगोटी बद्ध संन्यासी दण्ड कमण्डलु हाथ में लिए भीख मांगते हुए जाते दीखा- उसका चेहरा तेजःपूर्ण था- भिखारी होते हुए भी मानो हाथी की तरह झूमता हुआ जा रहा था कोई सोच फिकर नहीं। इस दृश्य को देखते ही बुद्ध के प्रश्नों का हल हो गया- उन्होंने सोचा कि-बस यही एक उपाय है जिससे मैं पूर्व तीन अवस्थाओं से बच सकता हूं

इधर हमारे स्वामी को देखिए- शिवरात्रि के व्रत के माहात्म्य को सुन व्रत रखा मन्दिर में कथा सुनने गए सारी रात वहीं जागते रहे ताकि व्रत महत्वपूर्ण हो- आधी रात के समय जब सभी सो गए- एक चूहा आकर शिव जी पर पड़े भोग को खाने लगा स्वामी जी यह दृश्य देखते ही चौंक उठे- सोचा कि क्या यही शिव है जो संसार के कर्ता धर्ता हर्ता है? यह तो अपने ऊपर चढ़े चूहे को भी नहीं हटा-

सकते हमारी रक्षा तो कोई ही करेंगे। उसी समय उठे पिता को जगाकर उनसे बात कह सुनाई परन्तु जवाब ठीक न मिला। इसी प्रकार जरा, व्याधि के मृत्यु दृश्य देखे और मन में निश्चय किया कि - वास्तविक सुख और सच्चे मोक्ष के आनन्द का पता लगाकर रहूंगा।

दोनों महात्माओं ने घर सम्पत्ति की पराकाष्ठा तक पहुंचे हुए थे। वंश ऊंचे थे। बुद्ध शाक्य वंशीय राजघराने की औलाद थे। दयानन्द औदीच्य ब्राह्मण थे। घरों में सब प्रकार की सुख चैन की सामग्री विद्यमान थी पर किसी की कुछ परवाह नहीं किन्तु उस नित्य आनन्द की धुन लगी है उसके लिए दोनों ही महात्मा अपना घर बार छोड़ जङ्गल की ओर रवाना होते हैं।

पूर्व इसके कि - उनके बनवास के जीवन पर दृष्टि डाली जाय इनके गृह-त्याग के पूर्व के जीवन पर दृष्टि डालना जरूर होगा। शिक्षा का प्रभाव बतलाने के लिए पर कुछ नजर में पड़ना आवश्यक है -

महात्मा बुद्ध चूंकि - राज घराने में पैदा हुए थे। अतः इनको शिक्षा भी बहुत युद्ध शास्त्र आदि दार्शनिक विद्याओं की ही अधिक सिखाई गई। पर महर्षि दयानन्द ने अपने प्राचीन शास्त्रों का ही बाल्यकाल में अध्ययन किया था। इस शिक्षा भेद के कारण दोनों महात्माओं के आगामी जीवन में बड़ा अन्तर आया।

बुद्ध का ज्ञान अपने ही अनुभव और अपने ही दिमाग पर आश्रित था पर महर्षि दयानन्द ने जहां अनुभव और तर्क पर जोर दिया वहां प्रद्धर को भी न छोड़ा - उसने अपने प्राचीन महर्षियों के बनाए शास्त्रों को भी प्रामाणिकता दी -

बुद्ध ने इन शास्त्रों को खुद कभी उठा कर न देखा

परन्तु अवश्य स्मरणीय है कि इन में उन्हीं यज्ञों का वर्णन है जिन में (महाभारत) पशुओं का वध होता है। उसी युद्ध का वर्णन है जिस के मारे लोग आहत, अपमानित हो रहे हैं। अतः उन के नाम से ही घृणा थी।

महर्षि दयानन्द ने क्योंकि इन की मान्यता अवश्य करनी थी अतः अपने व्याख्यान में उन में भी अच्छाइयाँ प्राप्त कीं –

बुद्ध का बनवास काल अधिकतर स्वतंत्र चिन्तन में ही व्यतीत का कारण योग्य गुरु का न मिलना था। बुद्ध की पूर्णता हो सकती है। जिस से बुद्ध अपने विचारों की दूसरों के विचारों से तुलना न कर सका। शायद इसी कारण बुद्ध ने ईश्वर आदि के विचारों की उपेक्षा ही कर दी।

महर्षि दयानन्द को लोगों से समय २ पर योग्य गुरुओं का सहवास मिला जिस से उन्होंने अपने विचारों को अधिक मनन करने का प्रकाश किया। इसी से उन का जीवन त्याग और पुरुषार्थ का अपूर्व निदर्शन बन गया।

प्रारम्भिक शिक्षा के कारण ही बुद्ध को इतनी कठिन तपस्या करनी पड़ी – जिसकी निष्फलता पर उसे मध्यम मार्ग की शिक्षा मिली। पर महर्षि दयानन्द को इसी ओर से वैराग्य नहीं हुआ। उन का वैराग्य ज्ञानमय था। किसी चोट के कारण हुए वैराग्य का परिणाम आवश्यक है कि दुनिया को दुःखमय ही दुःखमय बताया जाय पर यथार्थ मार्ग की खोज का वैराग्य ही बताएगा –

अतः इसी कारण बुद्ध और दयानन्द में यह भेद आया – बुद्ध ने संसार को दुःख का मूल बताया – दयानन्द ने अज्ञान को (दुःख का कारण बताया)

इस बनवास काल से आगे देखें तो फिर दोनों महात्मा पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने बुद्ध ने मत योगियों की भांति जङ्गलों और पहाड़ों में रहना

'आर्य सिद्धान्त

दुनियां की और नज़र की लोगों की अवस्था पर जिस आदि सम्राटों के अपूर्व आनन्द को छोड़ा। इन्होंने दिनों की सेवा पर आनन्द हुए। सेवा काल में दोनों को नाना प्रलोभन दिए गए बुद्ध को जहां राजाओं की सम्पत्ति का लोभ दिया गया वहां दयानन्द को अनेक महाराजाओं की गद्दी का प्रलोभन मिला — पर किसी ने किसी की परवाह न की और अपने कार्य में ही तत्पर रहे।

बुद्ध के समय भारत ~~स्वाधीन~~ था — इस पर भी विभागों में स्वतन्त्र राज्य होते थे — जिस से बुद्ध ने उन राजाओं पर अपना प्रभाव डाल बौद्ध धर्म का प्रचार किया —

इधर महर्षि दयानन्द के समय ~~स्वाधि~~ भारत परतन्त्र था — इस पर ईसाइयों का राज्य था — इस से साम्राज्य की ओर से तो सहायता मिलनी सर्वथा असम्भव थी। छोटे २ परतन्त्र रियासतों से ही कुछ कुछ सहायता मिल सकती थी उस ओर महर्षि ने प्रयत्न किया पर शोक! कि शीघ्र ही परलोकगामी हुए।

इसी प्रकार दोनों ने मृत्यु के समय अपने २ शिष्यों को बुलाकर शोक (?) उपदेश देकर प्राणों को शीघ्र देह से निकाल दिया।

इस प्रकार दोनों का जीवन आदि से अन्त तक अपूर्व समानताओं से पूर्ण है।

इन के सिद्धान्त भी विशेष मिलते ही थे — हैं जो भेद आता है वह जीवन की भिन्नता के कारण — जैसे कि — अपर समाचार (?) में पर बतलाया जा चुका है

प्लेटो और वैदिक वर्ण-व्यवस्था.

(ले० ब्र० धर्मवीर)

पाठक गण !

प्लेटो का नाम यूनानी इतिहास में बड़े गर्व से लिया जाता है। यह महात्मा सुकरात का शिष्य है। यह ग्रीक राजनैतिक सिद्धान्तों का जीवनदाता है। इस का प्रभाव यूरोप की राजनीति पे बहुत पड़ा। यह कौन है - कहां पैदा हुआ है? इन प्रश्नों का उत्तर देना हमें अनुपयुक्त जान पड़ता है। यहां पर हमने केवल इस बात का विशेष विचार करना है कि इस राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक का कल्पित आदर्श समाज क्या था? तथा यह आदर्श समाज वैदिक-आदर्श समाज से साम्य रखता है या नहीं? सब से पहले हम वैदिक आदर्श समाज को आप के सम्मुख रखना चाहते हैं और यह भी बताना चाहते हैं कि अब इस में क्या रूपान्तर आ गए हैं। यहां पर एक बात ध्यान रखने योग्य है कि आदर्श समाज से मेरा अभिप्राय "वर्णव्यवस्था" से है। इस का बहुत कर हम अनेक विषय में करते हैं :

आदर्श समाज :—

वर्णव्यवस्था का प्रश्न बहुत ही महत्व का है। क्योंकि इस देश के तीन चौथाई लोग इस के अनुयायी हैं। जिस प्रकार की वर्णव्यवस्था आजकल प्रचलित है उस में अनेक प्रकार के गुणों का लोप हो गया है। और इस की जगह में अनेक दुराचार आ रहे हैं जो उन्नति के मार्ग में बहुत बाधक हो रहे हैं। यदि वर्णव्यवस्था का सदुपयोग हो तो भारत क्या सारे संसार को इस से महान लाभ होगा। इस के द्वारा धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक, सामाजिक सभी प्रश्नों का समुचित हल हो जायगा जिन के कारण मानव समाज चक्कर में पड़ा है।

आजकल अपने लाभ के लिए दूसरों को धोखा देते हैं और उन से अनुचित लाभ उठाते हैं - अधिकार का दुरुपयोग करते हैं, मान मर्यादा तथा प्रतिष्ठा को तिलाञ्जलि ही दे बैठते हैं। अनेक तरीकों से उचित तथा अनुचित आनन्द और विलासिता के शिकार बनते हैं। इस का यदि हम कारण

पता लगाने की कोशिश करें तो एक बात हमें यह पता लगती है कि वेद के इस मन्त्र को :-
"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत"
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, समाज के अङ्ग हैं इनको सर्वथा भुला दिया गया है। इस से स्पष्ट पता लगता है कि समाज का [illegible] उस का अंग था। शरीर के अङ्गों की तरह से चारों वर्ण समाज के अङ्ग-भूत थे। इस समय प्रत्येक मनुष्य की वृत्ति [illegible] था कि जिस वर्ण को ग्रहण करना चाहे कर सकता था। आजकल की तरह [illegible] - जिस [illegible] की इच्छा से जीवन की आवश्यकताओं का निश्चय रूप से व्यवहार हो रहा है। प्राचीन वैदिक वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण का काम [illegible] का पढ़ाना था- इन के आचार का निरीक्षण करना होता था। शेष धन, युद्ध, तथा सेना से इस का कोई सम्बन्ध न था। इस के बदले में इसे बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी। क्षत्रिय का काम पढ़ाना न होता था- प्रत्युत इस का काम शासन तथा सद् की रक्षा और असत् का त्याग करना होता था। इस का सम्बन्ध धन-वैभव से कुछ भी न था। और इसी प्रकार वैश्य का काम होता था कि तीनों वर्णों को भोजन सामग्री दे कर सन्तुष्ट करे। वह व्यापार, [illegible] जिन में धन की आवश्यकता होती है यह उन्हें देवे। इस के बदले में उसे पढ़ाने वाला तथा सेवा करने वाला व तथा शासक, सभी मिल जाता था। शूद्र का काम तीनों वर्णों की सेवा करना था वह [illegible] से अपना जीवन सन्तुष्टता [illegible] उस का भोजन, धन, पढ़ाने तथा शासन करने से सम्बन्ध था। इस प्रकार की वर्ण व्यवस्था से जिस में इस प्रकार का विभाजन प्राकृतिक आवश्यकताओं तथा इन के अनुरूप गुण-कर्म के आधार पर हो और साथ ही साथ तदनुरूप पेशों की शिक्षा की भी व्यवस्था हो, तो इस का परिणाम समाज के लिए प्रत्येक हितकारी हो। फिर वर्ण व्यवस्था शब्द अपने विशुद्ध अर्थ को सार्थक कर [illegible] और अपनी सरलता तथा उपयोगिता को स्थापित करने में पुनः समर्थ होगा। इस से प्रत्येक व्यक्ति को

इच्छानुसार व्यवसाय करने का लेकिन पूरा अवसर मिलेगा और उसकी अनुसार उसकी जाति बना दी जायगी और फिर वह उसी जाति का होकर रहेगा। दूसरी जाति में जाने का उसे उत्तम अवसर नहीं मिलेगा। इस प्रकार वर्ण संकर भय, भ्रष्टता, अनैतिक उपयोग की आशंका जाती रहेगी और अपने काम का निर्वाह सफल बनाने के उत्तम रहकर समाज की व्यवस्था बढ़ जायगी। क्योंकि और अधिकार का आधार धन और सम्पत्ति नहीं रहेगी इसलिए इन के लिए झगड़ा मिट जायगी, अति निर्धनता और अति धनिकता दूर होजायगी और जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवहार हो जायगा। गृह कलह और राष्ट्रीय कलह, मालिक मजदूर का झगड़ा, नर नारी का संघर्ष, ऊंच नीच का झगड़ा, राष्ट्र राष्ट्र का झगड़ा सब दूर होजायगा। यही स्वाभाविक है। इस व्यवस्था को जो व्यक्ति समाज का उद्धार करना चाहते हैं उन को इसी पर ध्यान देना चाहिए [illegible]

नहीं चल सकता। यही कारण है कि प्लेटो ने अपने ग्रन्थ में इसी का अवलम्बन किया। हम यह नहीं कहते कि उस ने वेद पढ़ कर यह बात निकाली - दिमाग से सोची हो; परन्तु हम इतना अवश्य कहते हैं कि उस ने वेद के भिन्न मन्त्र के भाव अनुसार ही वर्ण का आदर्श समाज की कल्पना की। उस के आदर्श समाज में वेद का वचन अवश्य चरितार्थ होता है; जो निम्न है

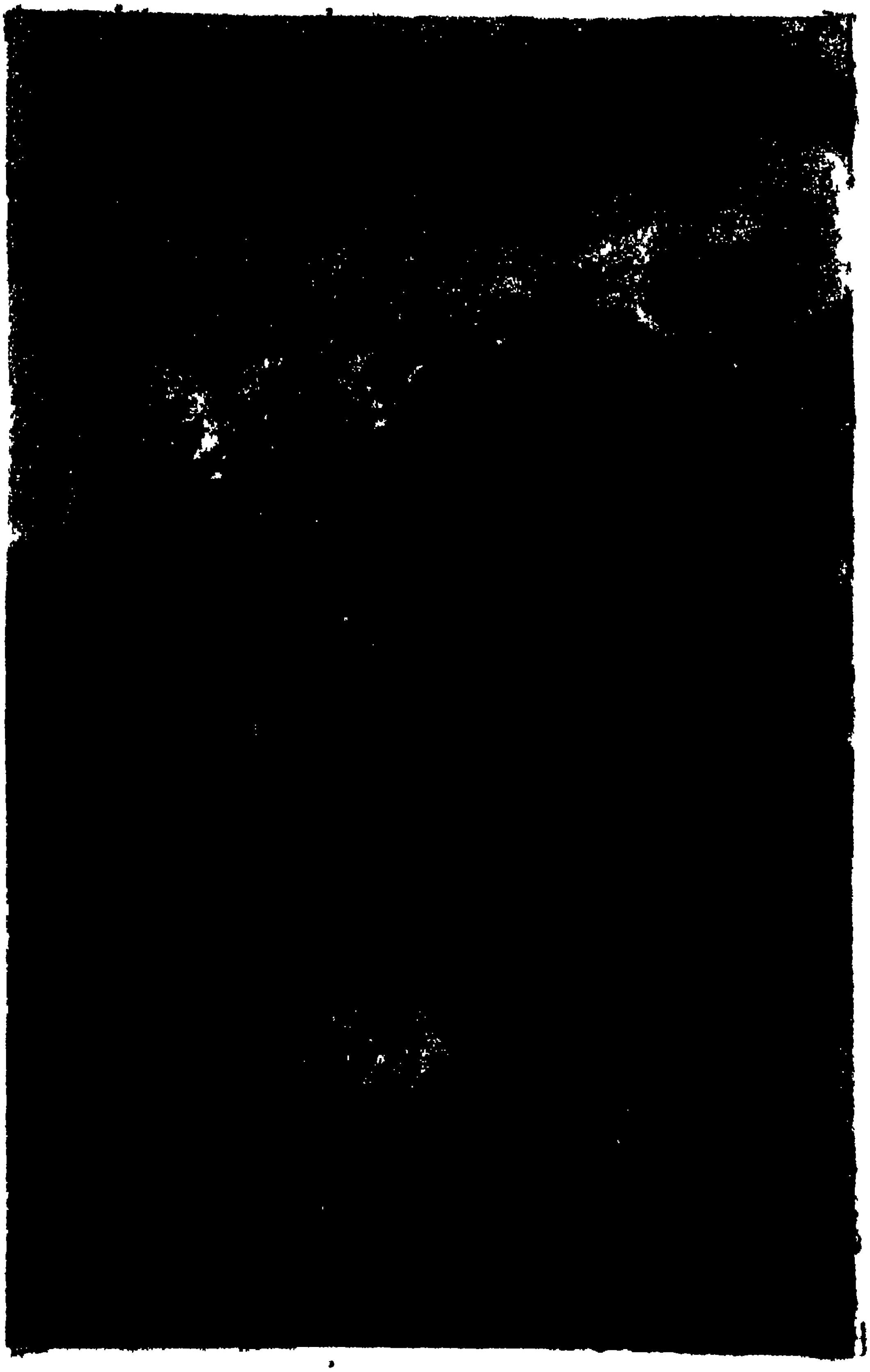
"क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै"

ऋग्वेद मं. १/अ. २८/सू. ११३ मन्त्र ६

हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि जो भी सामाजिक जीवन का उद्धार करना चाहता है वह स्वयं अपने दिमाग से यही मार्ग ढूंढ सकता है। अस्तु प्लेटो के आदर्श समाज में मनुष्यों का विभाग तीन जातियों में किया गया है। एक तो सुवर्ण के मनुष्य, अर्थात् शासक या नीतिपालक। दूसरे चांदी के मनुष्य अर्थात् योद्धा गण और तीसरे लोहे और पीतल के मनुष्य अर्थात् श्रमिक हैं।

वैदिक वर्णव्यवस्था में यह ठीक — ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि आप वर्ण होने के अनुसार ब्राह्मण हैं परन्तु वैदिक आदर्श विधान में [illegible] इस का उत्तर सहज है। वैदिक वर्णव्यवस्था के अनुसार [illegible] ब्राह्मणों को होना था — प्रधान [illegible] अवश्य ब्राह्मण होता था। समस्त विभाग में ब्राह्मणों की अनुमति से ही काम चलता था। इस कारण यह कोई पेचीदा प्रश्न नहीं रह जाता। फिर हम विषय में आते हैं। प्लेटो का कथन है कि इस प्रकार के वर्ण विभाग से आपस के सब झगड़े मिट जायेंगे। प्रत्येक वर्ण अपना २ काम करेगा और इस प्रकार समस्त जाति की उन्नति में सहायक होगा। इस अवस्था में ब्राह्मणों — पालकों की जिम्मेवारी बहुत ज्यादा है, इसलिए उन को उत्तम से उत्तम शारीरिक और मानसिक शिक्षा देनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि ब्राह्मणों के मन सांसारिक चिन्ताओं और प्रलोभनों से सदा मुक्त रहें। यदि वे स्वयं सांसारिक माया में लिप्त होंगे तो दूसरों का परिपालन भला क्या करेंगे? यदि इस प्रकार पर विचार करें कि मनुष्य दूसरों के हितों को क्यों हानि पहुँचाता है? दूसरों को क्यों धोखा देता है? झूठ क्यों बोलता है? तो हम इसका उत्तर यही दे सकते हैं कि स्वार्थ की भलाई दूसरों की हानि में समझते हैं। उनका दृढ़ विश्वास बना हुआ है कि दूसरों को धोखा देने से अपना स्वार्थ सिद्ध किया जा सकता है। यही बात प्लेटो के मन में आई और उस ने सोचा कि इस प्रकार जाति की उन्नति कभी भी सम्भव नहीं। इस कारण उस ने अपने आदर्श समाज में यही सिद्धान्त रखा जो कि वैदिक आदर्श समाज में था। अर्थात् मनुष्य की मानसिक अवस्था के अनुसार आवश्यक और स्वार्थ का निषेध बताया गया था। नितान्त स्वार्थी बनने का कोई भी अवसर न था। [illegible]

(अपूर्ण)



[चित्रकार- श्री [illegible] इन्द्रसेन]

वनविहार

[illegible] मनोहर दृश्य यह कैसा सजा हुआ। [illegible] है कहीं [illegible] पर है।
नभ में सुरम्य पंक्ति है [illegible] भरा हुआ ॥१॥ [illegible] विचर रहा उसे [illegible] ॥२॥
मृग [illegible] मोद से बैठे खड़ा हुआ।
[illegible]

संसार-समाचार

हि[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। यहाँ की सरकार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आन्दोलन [illegible] [illegible] अछूतों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दते। अछूत [illegible] हैं और उन्होंने [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] अछूतों [illegible] होना ([illegible]) [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] सरकार [illegible] [illegible] [illegible] परन्तु [illegible] समाचारों से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

श्री [illegible] स्वामी [illegible] [illegible] महाराज

श्री पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज दक्षिण का दौरा कर रहे हैं, हाल में ही पूना में उनका आगमन हुआ है, "हिन्दू संगठन" के विषय में उनका व्याख्यान भी हुआ है। श्री स्वामी जी शीघ्र ही वाईकोम के धरना-स्थल पर पहुँचने वाले हैं वहाँ से [illegible] दिन कलकत्ते के लिए रवाना होंगे।

काशी में सूर्य [illegible]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ८ मई को सूर्य ग्रहण दूरवीक्षण द्वारा देखा गया, सूर्य में बुध ग्रह का वेध हुआ है। [illegible] रखने पर सूर्य में सरसों के आकार का बुध दिखाई दिया। सूर्य का प्रकाश इतना तेज था कि बीच में रंगदार शीशा लगाने पर भी आँखें बिगड़ने की सम्भावना रहती थी।

पंजाब प्रान्तीय हि. सा. सम्मेलन

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन मुलतान नगर में होने वाला है। इस सम्मेलन के [illegible] वाले श्री पं. जयचन्द्र जी विद्यालंकार हैं।

सर्व भारतीय हि. सा. सम्मेलन का वृहत् अधिवेशन इस वर्ष देहरादून में होगा।

शोक है प्रसिद्ध देशभक्त, अजमेर निवासी श्री पं. अर्जुनलाल सेठी के ज्येष्ठ पुत्र पं. प्रकाशचन्द्र सेठी का निमोनिया से देहावसान हो गया। भगवान उनकी आत्मा को सद्गति दें। श्री सेठी जी के परिवार से हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

खेद का विषय है कि नागपुर से श्री प्रो. छेदीलाल जी बार-एट-ला, (भूतपूर्व अर्थशास्त्राध्यापक गु. कु. काँगड़ी) के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाला हिन्दी का प्रसिद्ध साप्ताहिक कर्मवीर आर्थिक कष्टों के कारण बन्द हो गया। साथ ही हिन्दी का प्रसिद्ध पत्र सत्यवादी भी इन्हीं कष्टों के कारण बन्द हो गया।

आगामी अगले मास में नागपुर में महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन मनाया जायगा। स्वागताध्यक्ष श्री गंगाधर राव चिटनवीस हैं।

आर्य सिद्धान्त क्या है?

प्रिय पाठकगण! आप में से कई ऐसे महानुभाव होंगे जिनके सामने हम पहली बार ही आए हैं। उनके मनों में यह प्रश्न उठना कि आर्यसिद्धान्त क्या है स्वाभाविक ही है। ऐसे महानुभावों के सन्तोष के लिये हम अपना थोड़ा सा परिचय देना आवश्यक समझते हैं।

सम्वत् १९७७ वि. के ज्येष्ठ में श्री पं इन्द्र जी वेदालङ्कार के प्रस्ताव से आर्यसिद्धान्त के ब्रह्मचारियों ने 'आर्यसिद्धान्त सभा' की नींव रखी थी। इसके प्रथम मन्त्री श्री पं यशपाल जी (स्नातक) नियत हुए थे। सभा का उद्देश्य आर्यसिद्धान्त के ब्रह्मचारियों की व्याख्यानशक्ति को बढ़ाना था। हमारे कुल में दस पन्द्रह मिनट तक तो भाषण करने वाले अनेक ब्रह्मचारी मिल सकते हैं परन्तु एक ही विषय पर धारा प्रवाह बोलने वालों की कमी है। स्नातक होने के अनन्तर हम में से जिन्हों ने सामाजिक सेवा के क्षेत्र में उतरना होता था उनके लिये विशेषतः यह कठिनाई थी। श्री पं इन्द्र जी ने इस बात को समझा और आर्यसिद्धान्त के ब्रह्मचारियों का इस ओर विशेषतः ध्यान खींचा जिसका परिणाम यही हुआ कि सभा की स्थापना होगई।

सभा में ब्रह्मचारी उत्साह पूर्वक भाग लेते रहे। प्रायः प्रति पन्द्रहवें दिन क्रमशः ब्रह्मचारियों के निबन्ध होते रहे और इन निबन्धों के बाद उन पर वाद विवाद भी हुआ। इस प्रकार धीरे धीरे सभा के तीन वर्ष व्यतीत होगए। १९८० विक्रम के संभवतः आषाढ़ में कार्यकारिणी की बैठक में यह निश्चय हुआ कि सभा की ओर से 'आर्यसिद्धान्त' नाम का एक मासिक पत्र प्रकाशित किया जावे। उस समय पत्र का प्रथम अङ्क श्री वामदेव जी के सम्पादकत्व में निकला। परीक्षा पास आने के कारण पत्र के अन्य अङ्क प्रकाशित न हुए।

१९८१ में पत्र का द्वितीय वर्ष प्रारम्भ हुआ। वैशाख में कार्यकारिणी की बैठक ने फिर प्रति मास अङ्क प्रकाशित करने का निश्चय किया। तदनुसार ठीक एक मास बाद आज १५ ज्येष्ठ को यह अङ्क आपके सन्मुख उपस्थित है।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु — आजकल कुल में ऋतु को देखकर यह अनुमान लगाना कि अब [illegible] का ज्येष्ठ का मास [illegible] है कठिन है। [illegible] एक दम बादलों का [illegible] और फिर कुछ बूंदा बांदी करके तितर बितर हो जाना [illegible] का स्मरण कराती है। [illegible] [illegible] कि ईश्वर [illegible] भी [illegible] ऋतु [illegible] [illegible] है।

सभाएं — इस समय यदि गुरुकुल की सब सभाओं की नामावली [illegible] तो पता लगेगा कि यहां आठ, दस [illegible] प्रत्येक सभा अपने अपने विशेष अधिवेशनों की चिन्ता में है। संस्कृतोत्साहिनी श्री पं विश्वनाथ जी के सभापतित्व [illegible] एक कवि सम्मेलन कर ही चुकी। वाग्वर्धिनी भी [illegible] किया ही चाहती है। इनके अतिरिक्त अभी पिछले सप्ताह ही [illegible] सञ्जीवनी सभा की ओर से एक 'आनन्द सम्मेलन' [illegible] सानन्द हो गया। इन सब के अतिरिक्त साहित्य-परिषद्, आयुर्वेद परिषद् और आर्यसिद्धान्त परिषद् में नियम-[illegible] हैं। इनके साथ ही Night 'Camp' [illegible] 'Club' भी चल रही है। ये सब [illegible] विद्यार्थियों की [illegible] शक्तियों के विकास [illegible] की अत्युत्तम [illegible] है।

पत्रिकाएं — इस सत्र में वाग्वर्धिनी की ओर से राजहंस, संस्कृतोत्साहिनी की ओर से 'गोष्ठी' [illegible] [illegible] की ओर से '[illegible]' [illegible] सञ्जीवनी की ओर से '[illegible]' [illegible] हो चुकी हैं शीघ्र [illegible] आयुर्वेद भी प्रकाशित होने वाला है। कुल के विद्यार्थियों को योग्यता [illegible] इन पत्रिकाओं को भली प्रकार पढ़ना चाहिये।

चिकित्सालय — आजकल चिकित्सालय में बड़ी [illegible] [illegible] रोगियों से [illegible] हुए हैं। छोटे [illegible] में खसरा और बड़ों में ज्वर का अधिक [illegible] है। ईश्वर ऐसे दिनों को [illegible] कुल में नहीं लाया करे तो [illegible] है। [illegible] से सदा [illegible] ही कल्याण है।

गुरुकुलीय हॉकी का प्रथम दल.

गुरुकुल में सब क्रीड़ा[illegible] की अपेक्षा ब्रह्मचारी दण्डक्रीड़ा में ही विशेष रुचि से [illegible] [illegible] 26 $\frac{7}{21}$ को कुल का प्रथम

दल "विजय यात्रा" के लिये चल पड़ा है। सहारनपुर से होते हुए संभवतः मेरठ, मुज़फ्फ़रनगर, मुरादाबाद, बिजनौर इत्यादि स्थानों पर जायेगा। ईश्वर करे हमारे भाई अपने यात्रा में सफल हों और हमारे कुल के यश को फैलाने में सहायक हों।

विनोद

(स्थान - पुस्तकालय की मेज)

विज्ञान :- क्यों भाई आर्य सिद्धान्त! बहुत दिनों बाद दर्शन दिये कहो कुशल तो है?

सिद्धान्त :- हां तुम्हारी कृपा है।

वि :- क्या बात है कुछ कमज़ोर (पतले) से दीख रहे हो? क्या भोजन कुछ कम मिलता रहा है? देखो ज़रा मुझे तो देखो पाक्षिक होकर भी तुमसे मोटा हूं।

आ. सि. - हां भाई बात यह है कि अब तो कलम का ज़माना है। आम की कलम लगादे तो मोटे आम, ~~हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ों को खिलाने से~~ युरोपियन और एशियाटिक को मिलादे तो मोटे करंट पैदा होजाते है तो फिर लेख की खिंचाई या कलम तुम क्यों पीछे रहोगी?

शताब्दि-महोत्सव

ऋषि दयानन्द जन्म शतसंवत्सरी समीप आरही है। आर्य जनता इसके लिए विशेष तैयारी कर रही है। गुरुकुल महोत्सव पर संवत्सरी सम्बन्धी कई बातों पर विचार किया गया था उनको कार्य रूप में परिणत करने के यत्न हो रहे हैं।

सत्यार्थ प्रकाश का संस्कृत अनुवाद छप रहा है। स्मृति संग्रह के विषय में विद्वानों की राय ठीक नहीं है। आर्य समाज का झंडा गेरुवे रंग का तथा उसमें स्वर्ण वर्ण से "ओ३म्" लिखने का निश्चय हुआ है। प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द जी के ग्रन्थों को लेकर छपवाने का प्रबन्ध हो रहा है। संवत्सरी के बाद दयानन्द संवत् १०१ माना जायगा ऐसा निश्चय हुआ - इसके बाद "ओं संगच्छ" तथा "ओं नतनाद" निश्चय हुए हैं।

शताब्दी का उत्सव एक सप्ताह तक होगा। उसमें विद्वानों की परिषद् होगी आर्य सम्मेलन होंगे, व्याख्यान होंगे भजन गाये जायेंगे, समालोचनाएँ होंगी, सामगान होगा; ब्रह्मचारियों की खेलें होंगी। कुश्ती भी होगी। इसलिए सम्मति है एक वृहत् कवि सम्मेलन भी किया जाना चाहिए।



अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः॥ यजुः॥

ज्येष्ठ	ब्र. देवदत्त मन्त्री आर्यसिद्धान्त सभा द्वारा प्रकाशित.	१९८१ वि.
वर्ष २	सम्पादक — ब्र. गौतमदेव.	अङ्क... २

ईश प्रार्थना

प्रीति तौ मरनऊ न बिचारै।
प्रीति पतङ्ग जोति पावक ज्यों जरत न आपु संभारै॥
प्रीति कुरङ्ग नाद स्वर मोहित बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन में उड़त न आपु संभारै॥
सावन मास पपीहा बोलत पिउ पिउ करिओ पुकारै।
"सूरदास" प्रभु दर्शन कारन ऐसी भांति बिचारै॥

'सूरदास'

ग्रीष्म महिमा

(१)

शुष्क हुवे आकाश, बाल द्रुम झुलस गये हैं।
हरे हरे। वे हरे सकल द्रुम झुलस गये हैं॥
तरणि किरण से विषम अग्नि ज्वाला बरसाते।
प्रलय काल का रूप दावानल भी बरसाते॥

(२)

वापी कूप तड़ाग नदी नद नीर नहीं है।
खग मृग प्यासे फिरत चरत अब धीर नहीं है॥
अति अगाध सर सलिल ताप से तपत महा है।
तड़प रहे पाठीन मीन बन दीन अहा है॥

(३)

अन्धड़ चलत अनन्त पथिक पथ भूल गये हैं।
सुन्दर गिरिवन बाग नगर सब धूल भये हैं॥
चन्दन चोवो, खस गुलाब सब विफल हुये हैं।
शीतल सब उपचार चारु नहि सुफल हुये हैं॥

(४)

अहि मयूर मृग बाघ झुण्ड चल विकल कलपते।
राजा रंक समान विपुल तनु ताप तलपते॥
भूले हैं रस रास विलास विलासि जनों के।
हैं केवल घनश्याम सहाय निरास मनों के॥

"श्रीहरि"



प्र. नारायणदत्त

स्वप्न क्या है? विरोधी भावों का सम्मेलन — मैं बिस्तर पर पड़ा हूं - आंखें बन्द हैं - पर अनुभव कर रहा हूं - कि अकालियों के जत्थे का सरदार बन कर, बाद गुरु की फतह करता हुआ जैतो के सत्याग्रह में भाग ले रहा हूं - कहीं से आवाज नहीं पर शोर सुनाई दे रहा है - रजाई में आराम से पड़ा हूं पर कोड़े लगते मालूम हो रहे हैं - असम्भव से असम्भव बातें सम्भव दीख रही हैं उड़ते हुए मनुष्य, आकाश में फूल, सींग वाले खरगोश जिन्हें दार्शनिक लोग कल्पनातीत समझते हैं - सब प्रत्यक्ष दीख रहे हैं —

और देखिए क्या अपूर्वता है - आज सारा दिन गणित का एक प्रश्न निकालता रहा - इधर गया - उधर गया - सब ओर घूम लिया - पर समस्या वैसी की वैसी ही रही - पर ओह! इस समय सारा प्रश्न हल हुआ पड़ा है - कोई बताने वाला नहीं - कागज पेन्सिल भी - मेरे पास नहीं - पर यह क्या हुआ! लोग कहते हैं कि - अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती - पर अब आप बताइए यह सब कहां से पैदा हो रहा है नैयायिक तो कह देगा कि यह सारा संसार ऐसा ही है - यह कोई विचित्र अवस्था नहीं - नैयायिक के सिर पर आफत!

क्या हम समझ लें कि यह सब बिना कारण हो रहा है? यदि हां - तो आप की मेज़ कुर्सी आदि तथा अन्य कपड़े सारे के सारे बिना कारण के क्यों नहीं पैदा हो जाते - जब कार्य कारण भाव का नियम ही जगत् में नहीं - तो आप यहां किस लिए बैठे हैं - आप कैसे कह सकते हैं कि मेरे बोलने से आप कुछ सुन सकेंगे - यदि आप ने सुनना होगा तो मेरे बिना बोले ही सुन लेंगे क्योंकि कार्यकारण भाव तो है ही नहीं! यदि सब कुछ सकारण है तो यह स्वप्नमय जगत् कैसे बना? इसमें भी कोई नियम काम कर रहा है - व्यवस्था है -

आप समझते हैं कि आंख बन्द करने पर आप कुछ नहीं देखते - पर यह सख्त भूल है - इस समय मेरे सामने ज़रा एक बार आंख बन्द कर देखें - सामने एक काला सा Back ground आप को दीखेगा - उसमें कुछ दाने से इधर उधर गति कर रहे हैं - कभी चमकते हैं कभी फिर धीमे पड़ जाते हैं - ज़रा ठहरिए अभी आंख बन्द रखिएगा - मैं आपके सामने एक जलता हुआ लैम्प लाता हूं - उसी समय आप बोल उठेंगे - इसे परे ले जा - यह क्या सामने ले आया है - अब मैं लैम्प हटा लेता हूं -

आप की आँखों के पास ही सामने हाथ-कर देता हूं - आप और पहले की अपेक्षा-कुछ गाढ़ा सा अंधेरा अनुभव करेंगे —

इसी प्रकार आप थोड़ी देर के लिए-कान बन्द कर लीजिए - मक्खियों के भिन-भिनाने की सी आवाज आप को सुनाई-देगी।

कहने का तात्पर्य यह है कि-आप इन इन्द्रिय-द्वारों को बन्द करने पर भी-इन से बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं - यह न कहिएगा कि-आंख बन्द किए हूं तो-देख कैसे सकता हूं? कान बन्द करने पर सुन कैसे सकता हूं?

शयनावस्था में भी यही समझियेगा कि इन्द्रियों में रूपादि सूक्ष्म रूप से समाये रहते हैं।

शयन की अवस्था को हम ५ भागों-में विभक्त कर सकते हैं।—

(१) आलस्य या तन्द्रा
(२) निद्रा का प्रारम्भ
(३) गाढ़ निद्रा
(४) निद्रा का धीमा पड़ जाना
(५) निद्रा भङ्ग

पूर्ण निद्रा की अवस्था में इन्द्रियां बिलकुल निस्तब्ध होती हैं - मन की गति-भी सर्वथा रुकी रहती है - इसी को माण्डूक्योपनिषद् में इस प्रकार बताया है कि-

"यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते, न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्"

सु + सुप्ति - अच्छी तरह से सुप्त - या-गाढ़ निद्रा की अवस्था में मनुष्य को कोई स्वप्न नहीं दीखता - कोई संकल्प उसके-मन में नहीं उठता।

शेष अवस्थाओं में निद्रा-भंग की अवस्था को छोड़ शेष तीन को-स्वप्नावस्था में डाल सकते हैं - इस अवस्था में मनुष्य अर्द्ध-चेतनता में होता है

अर्द्ध-चेतनता के कारण - इन्द्रिय-गृहीत वस्तुओं का उसे प्रत्यक्ष तो होता-है पर वह ठीक तौर पर पहचान नहीं सकता कि क्या है - उनके स्वरूप की-कल्पना, उस समय की अवस्था के अनुसार-कर लेता है - उदाहरण के तौर पर-कुछ आदमी स्वप्नावस्था में हैं - आप वहां-जाकर एक एक दियासलाई जला-दीजिए। इस समय के उनके स्वप्नों में-आप अपूर्व समानता देखेंगे - सब के स्वप्न इस प्रकार के होंगे जिनमें अचानक-रोशनी का भाव हो — जिन लोगों ने गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव देखा होगा वे उन्हीं झोंपड़ियों के जलने का स्वप्न-देखेंगे। जो कहीं तमाशा देखने गए-होंगे उन्हें-वहां का स्थान ही जलता-दीखेगा। इसी प्रकार के अन्य विद्युत्पात-आदि के स्वप्न ऐसी अवस्था में आएंगे।

यदि रात भर घर में दिया जलता रहे-तो स्थिर प्रकाश सम्बन्धी स्वप्न-

आप देखेंगे - चारपाई में सोए हुए आप खूब आनन्दमय स्वप्नों में भी रात गुजार सकते हैं।

इसी प्रकार शब्द का है - आप मौज में पड़े हैं एक दम कुछ ऊपर से गिरा - उस समय कोई मकान गिरने का स्वप्न लेगा - किसी को स्वप्न आयगा कि चोर ऊपर से कूदे - मेरी सम्पत्ति ले जारहे हैं। - मैं बँधा पड़ा हूं - कोई लड़ाई के नजारे देखेगा - कभी अपने शत्रु को गिरता देखेगा - कभी अपने पड़ोसी को। कभी किसी का [illegible] टूटता देखेगा कभी धनुष आजकल के युद्ध वीर तोप से अपनी सेना या शत्रु की सेना का ध्वंस कर रहे होंगे

जिन विद्यार्थियों को सदा शेर चीते की फ़िकर रहती है वे जरा से खटके से अपनी बहादुरी की महीनों में समाप्त होने वाली कथाओं को भी गढ़ सकते हैं। मौलवी सा[illegible] के पास पढ़ने वाले - उन्हीं को बेर पटकते आते देखेंगे - और लेटे लेटे ही पुस्तक पढ़ने लग जायेंगे - पुस्तक उलटे अगर देर होजाय तो अपने को पिटता हुआ भी अच्छी तरह देख लेंगे।

एक विचित्र भी [illegible] एक व्यक्ति हुआ है एक बार जब वह सो रहा था - उसके कान के पास एक व्यक्ति ने कैंची चलाई। उसे स्वप्न आया कि प्रातःकाल का घण्टा बज रहा है और मैं इस समय एक लड़ाई में खूब जोर से भाग ले रहा हूं। [illegible] प्रकार - हवा के चलने पत्तों के [illegible] आदि के शब्दों से नाना प्रकार के स्वप्न आसकते हैं इन्हीं से आप पारस्परिक वार्ता संगीत आदि का आनन्द [illegible] स्वप्न में ले सकते हैं।

स्पर्श के कारण भी स्वप्न भिन्न प्रकार के होजाते हैं। — एक बार एक व्यक्ति का स्वप्न आया कि मेरे पास ही सोने के ढेर पड़े हैं एक ऊंचा है दूसरा नीचा है - मैंने बहुत यत्न कि[या] कि मैं इन को बराबर करूं - ऊंचे ढेर में से सोना निकाल निकाल कर निचले ढेर में डालता गया पर दोनों को समान न कर [illegible] - एक दम उसकी नींद खुली तो उसने देखा कि उसका एक पैर चादर में इस प्रकार फंसा हुआ है कि - बहुतेरा यत्न करने पर भी वह उसे [illegible] कर शय्या पर नहीं रख सका - इस एक पैर के ऊपर और दूसरे के नीचे होने के [illegible] ऐसा स्वप्न [illegible]। सोते हुए कभी अपने ही बालों, कभी चलती [illegible] तथा कभी उड़ते हुए धूल कणों का स्पर्श होता रहता [illegible] स्पर्शों [illegible] स्वप्न आसक[ते] [illegible]। कई बार जब हम करव[ट] [illegible]

शेष कुछ भाग शय्या से ऊपर होता है तथा स्पर्श शय्या से नहीं होरहा होता इस से हमें - भूमि पर न होने अर्थात् उड़ने आदि के स्वप्न आने लगजाते हैं।

कभी २ पेट में अपचन के कारण-या अन्य कारणों से वायु आदि ऊपर नीचे उठते से अनुभव होते हैं इन से भी-उड़ने के, एक दूसरे के पीछे दौड़ने के-स्वप्न आसकते हैं -

कभी कभी श्वास चलते चलते रुकसा जाता है - इस से मनुष्य स्वप्न-लेने लगता है कि मैं दौड़ा हुआ जा-रहा था रास्ते में अमुक ने आकर रोक-लिया बहुत ज़ोर लगाने पर भी न छोड़ा।

कई लोग सोते हुए मुख खोले-रहते हैं। मुख पर वायु में उड़ते धूल-कणों के स्पर्श से वे नाना प्रकार के-खाद्य पदार्थों ~~अनुभव~~ के रसास्वाद का अनुभव करने लग जाते हैं - इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों का भी समझि-लेना।

इन सब अनुभवों को हम दो-भागों में विभक्त कर सकते हैं - प्रथम आन्तरिक, द्वितीय बाह्य.

आन्तरिक - अनुभव वे हैं जो-इन्द्रियों को बाह्य वस्तु के सन्निकर्ष के बिना ही प्राप्त रहते हैं - जैसे-आंखों के बन्द करने पर नाना वर्णों के दानों का कभी चमकते - कभी धीमा पड़ते दीखना। कानों के बन्द करने पर भी एक विशेष प्रकार के शब्द का सुनाई देना।

द्वितीय- बाह्य-अनुभव वे हैं जो प्रकाश-आहट, या वस्त्रादि के स्पर्श के कारण हों। यही दोनों प्रकार के अनुभव रात को-नाना प्रकार के स्वप्नों को लाते हैं -

अब प्रश्न हो सकता है कि दस-आदमी सोए पड़े हैं - मैंने एक दिया-सलाई जलाई - दसों को गुरुकुल के-जलसे पर झोंपड़ियों के जलने का स्वप्न-क्यों नहीं आया - सब को भिन्न क्यों-आये?

लोग प्रायः कहा करते हैं कि - जैसा तुम दिनभर सोचोगे उसी प्रकार-के स्वप्न रात को आवेंगे - क्या बात है-ऊपर आप देख आये हैं कि किस प्रकार इन्द्रियों के भिन्न२ अनुभव स्वप्नों की-भिन्नता में कारण होते हैं - परन्तु इससे हम केवल इन्हीं इन्द्रियों के-कार्य को स्वप्न की कल्पनाओं में - कारण नहीं कह सकते। इन्द्रियां उतना ही कार्य करती हैं जितना कि मकान-

विजय वैजयन्ती

अमृत का शोध

है। इन की स्वर्गीय-भू-पुत्रियाँ कहाँ गई? वह भी कुछ जवाब न दे कर- ऋषियों के आघात के बहाने मानो संध्या को लौटे कर की चरण रज को पुनः पखारने के लिए अधिकाधिक और अधिकतम वेग से दौड़ पड़ती है। इसका कारण हो जब मैं अयोध्यापुरी के पास जाता हूं और पूछता हूं कि - हे अयोध्यापुरी! एक बार तुम दीपावलि के आलोक से आलोकित और प्रकाशित हुई थीं किन्तु आज उसी आलोक से आलोकित और प्रकाशित होती हुई भी वे सब श्री-सम्पन्न क्यों दिखाई नहीं देती?

क्रमशः —

गुरुकुल जगत

अवकाश के बाद,

गुरुकुल की सूनी आबादियाँ फिर से बस गई हैं। लगभग सभी - एक दो विद्यार्थियों को छोड़कर जो ठहरे हैं :— विद्यार्थी अपने घरों से लौट आए हैं। कुल का उजड़ा हुआ आंगन फिर से कुल [illegible] की चहल पहल से चहक उठा। प्रायः सभी विद्यार्थी स्वस्थ और प्रसन्न हैं। [illegible] के कारण विद्यालय अभी नहीं लगा है। सभी ब्रह्मचारी उत्सव को सफल बनाने के लिए यथाशक्ति यत्न कर रहे हैं। —

दीपमालिका के उपलक्ष में २ [illegible]

[illegible] दीपमालिका [illegible] [illegible] मुख्याधिष्ठाता [illegible] और [illegible] का [illegible] हुआ था।

पारितोषिक निम्न प्रकार थे:

मुख्य कुलपति — मुख्य कुल-

रामचन्द्र (विश्ववीर)

काशीराम (जलभूषण)

आनन्द (प्रेमसागर)

समाचार संग्रह

कि आप राजनैतिक क्षेत्र की तरह साहित्यिक क्षेत्र में भी क्रान्ति की उथल पुथल मचा देंगे.

— सुभाष चन्द्र बोस को कलकत्ते के एडिशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने 2000) की जमानत पर छोड़ दिया है.

— देहली के डिपुटि कमिश्नर ने जो कि देहली म्युनिसपैलिटि के प्रेसिडेन्ट भी हैं — महात्मा गान्धी को अभिनन्दन पत्र देने की आज्ञा दे दी है. -

— लॉर्ड और लेडी गोशेन अपनी लड़की मिस पोर्टल के साथ रनपुरा जहाज़ से इंगलैण्ड के लिए रवाना हो चुके हैं. --

— बर्मा में निर्वासित द आफगान सरदार छोड़ दिए गए. -

— कलकत्ते से ५ बंगाली नवयुवक साइकिल पर कश्मीर यात्रा करने निकले हैं -

— आगामी जनवरी मास में भारतीय महिला सम्मेलन का चौथा वार्षिक अधिवेशन श्रीमती सरोजिनी नाइडू के सभापतित्व में बम्बई में होगा.

— मद्रास कौन्सिल में मलाबार लगान बिल पास हो गया है.

— अरब में भयंकर गृहयुद्ध हो रहा है. फ़ैजुल दरवेश ने इब्न सऊद की फ़ौजों को मार भगाया.

— रूस और चीन का गृह युद्ध जारी है. रूसी सेना ने लोहासुसू नामक स्थान पर कब्जा कर लिया.

— बर्मा की सरकार ने मॉडले का म्युनिसिपेलिटी के प्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर उसे अपने आधीन कर लिया. -

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रस्ताव सं. ११ श्री पं. [illegible] जी ने उपस्थित किया। यह प्रस्ताव [illegible] था। [illegible] साहित्य मंडल की योजना की गयी थी। प्रस्ताव पर [illegible] के बाद हुआ। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इसके बाद प्रस्ताव सं. १२ श्री [illegible] ने रखा। [illegible] ने [illegible] समर्थन किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव सं. १३ [illegible] हुआ। इस पर [illegible] हुए था। परन्तु [illegible] नहीं [illegible]। प्रस्ताव पर वाद विवाद बहुत समय तक हुआ। विवाद के बाद प्रस्तावक जी ने प्रस्ताव वापिस लिया। परन्तु [illegible] जी ने इसे अपना [illegible] और फिर रखा। प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। तदनन्तर अन्तिम प्रस्ताव [illegible] जी द्वारा रखा जाकर स्वीकृत हुआ। इस बैठक में [illegible] साधारण हुआ तथा उपस्थिति असन्तोषजनक थी।

चतुर्थ बैठक -

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की चतुर्थ बैठक [illegible] सम्मेलन के रूप [illegible] में हुई। इसमें [illegible] का [illegible] समारोह किया गया था। पुरस्कार [illegible] श्री [illegible] जी [illegible] जी [illegible] जी थे। [illegible] सम्मेलन [illegible] हुआ। [illegible] था। [illegible] थी। [illegible] नहीं थी। [illegible] का सम्मान न किया गया, [illegible] ने [illegible] part [illegible] [illegible] माना मुश्किल हो रहा था। [illegible] सम्मेलन समाप्त हुआ।

पांचवीं बैठक -

इस बैठक में सभा के [illegible] अनुसार [illegible]

Usury and interest will cease, and only the costs of issuing, securing, and carrying Mutual Bank notes will be charged, amounting to less than one per cent

Mutual Bank cheques, by their very nature, cannot depreciate. On this account, and because there will always be enough Mutual Money for all industrial and commercial needs (due to the flexibility of the issue), there will be no more money panics.

As money will be easy to get under the Mutual Banking system, sound enterprises will have no difficulty in getting financed This will eventually mean the disintegration of monopoly It will also mean the creation of many more jobs, and consequently competition among employers for workers, resulting in increasingly better conditions of work and pay, until at last the worker will receive the full product of his labor.

Mutual Bank in Operation

Let it be assumed that the Mutual Bank has been established and offers credit at the cost of operating the bank, which is about one per cent This will be the full rate charged on all loans. This rate comes into competition with the rate charged by all other banks and all other money lenders The effect on the other banks will be felt very soon, because no one is going to pay six or eight per cent for money when he can get it for one per cent or less. One of two things must happen. The old banks must either meet the cut and also

lend money at that rate, or else lose their customers who will go to the new bank. The new bank needs no capital, as it does business entirely on the capital of its customers, who are also its members; for every member virtually brings his own capital to the Mutual Bank when he joins it.

The business the Mutual Bank can do is unlimited, and each new member joining the Bank in creases the number of people who can do business with each other on this new basis The circle of exchange becomes wider and wider and it cannot be long, before the whole comunities is impelled by self interest to do business on this plan.

Once the Mutual Bank is operating, money will be available practically without interest to any responsible producer, so that his independence will no longer depend upon the whim of the usurer, but upon his determination and his ability in his line of work There will be big factories and small shops, and the demand for wage labor will be greater than the supply, with the result that wages will soar until they approach the full value of the work done Due to the elimination of interest, rent, and privileged profits, under Mutualism the cost of commodities will be much lower and money therefore will have more buying power, in addition to wages being higher Is this not a condition worth working for ? Once the Mutual Bank is established, Mutual exchange will permeate all society and demonstrate everywhere the benefits to be derived by adhering to the cost principle, so that society may at last move in the right direction

For the inauguration and successful operation of the Mutual Bank, a considerable number of representatives of diversified industries would be essential. The organization of such a group must be the first task of those who wish to put that phase of Mutualism into practice. The co-operatives have such an aggregation already at hand, organized and trained in associative effort Here, then, a beginning can be made, if such associations can be brought to perceive the immense benefits to all society to be derived from this extension of their principles. These associations have the psychological foundation and the mechanism for the purpose. Mutualism offers them this opportunity and assures them of its hearty co-operation.

The methods of approach for the credit group of organizations must, by now, be self-evident. Money and insurance at cost, occupancy and use, as essentials to land ownership; adherence to the law of equal liberty, and voluntary association, no compulsion for the non-invasive individual—all these are tenets of Mutualism which can never be emphasized too strongly. All things which make for the maximum of individual liberty compatible with equality of liberty are part of the Mutualist programme, no matter from what quarter they are tendered. And, per contra, anything which limits the liberty of anyone below the point needed to retain equality of liberty is a danger to the individual and therefore to human society as a whole, and in consequence is rejected by Mutualism. Liberty is the first need of man For Liberty is, as Proudhon so well stated, not the daughter but the mother of order